वर्ष ३

ओ३म् भक्ति ओ३म्

संख्या ६

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

ज्येष्ठ, १९८६

एक प्रति का मूल्य ।)

भक्ति के नियम

न की भक्ति का प्रचार करना, गो सके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, , मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का दिक अनुभूत औषधियों का प्रचार परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में र धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा हों का हित चिन्तन करना।

त्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रका- ा।

वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २)होगा महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के) देने वाले सहायक होंगे।

का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, करना, न घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुँचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
न		३३१
क [ले० श्री पूज्य भोले बाबा जी		३३३
(कविता) [ले० श्री० पं० रमाशंकर "श्रीपति"		३४१
[ले० श्री महात्मा राम		३४१
ी भक्ति		३४४
्मार (कविता) [ले० श्री० मदन ी सिंहल		३४७
७. गोरक्षा के प्रश्न की व्यापकता [ले० श्री० पं० गंगाप्रसाद जी अग्नि होत्री		३४६
८. शुभाशुभ फल निरूपण		३५२
९. श्रेयो निरूपण		३३६
१०. प्रेमा भक्ति [ले० श्री अनंतराम जी योगाचार्य कसूर		३५८
११. उपदेशामृत [ले० श्री भोले बाबाजी अनुपशहर		३६०
१२. भजन		३६१

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम, रेवाड़ी।

भक्ति के संरक्षक

भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१११)
ले० क० सरदार रघुबीरसिंह जी सांधोवालिया राजा सांसी, अमृतसर	१११)
ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी।	१०१
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा	५१)
सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा	५१)
राव श्रीराम जी रईस नांगल	२५)
म० शोभाराम जी डूंगरवास	"
राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास	"
बाई लक्ष्मादेवी भगनी राव जगमालसिंह जी रईस नांगल	"
बा० स्वयम्वरदास जी बी० ए० इन्सपेक्टर आफ स्कूल्ज़ पटना	"
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	"
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया चावड़ी बाजार दिल्ली	"
बक्शी चाननशाह एम. ए. एल. एल. बी. इन्कम्टैक्स आफीसर जालंधर	"
पं० गोपीनाथ जी [त्रिहाली निवासी] मालिक फार्म काशीनाथ बच्चूमल गली परांठा दिल्ली	"
श्रीमती खुशालदेवी धर्मपत्नी चौ० नवलसिंह जी कोसली।	"
सेठ शिम्भुदयाल जी बीकानेर	"
चौ० रामजीलाल जी धनाना, हांसी	"
चौ० चन्दनसिंह जी कप्तान दतिया राज्य	"
ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नान्धा	"
ला० दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर	"
राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली	"
लक्ष्मी देवी खोसला धर्मपत्नी ला० बद्रीनाथ जी बी. ए. श्रीनगर	"
बाई बदामो देवी पुत्री ला० गनेशीलाल चर्खीदादरी	"
श्रीमती भक्ताणीदेवी धर्मपत्नी भक्त नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी	"
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी ला० प्रभुदयाल जी "	"
श्री० गणपतिदेवी धर्मपत्नी ला० गंगाप्रसाद जी दादरीवाले, साहबगंज	२५)
सेठ उमरावसिंह जी डालमियां चिड़ावा	५१)
मक्खी चण्डूमल बलीराम जी भटण्डा	५१)
सर आपा राव सातोले साहिब सी० एस० ई० के० बी० ई० रैवेन्यू मेम्बर ग्वालियर	५१)
राव गजराजसिंह जी बी० ए० एल० एल० बी० गुड़गावां	२५)
सेठ नागरमल जी सेखासरिया आनरेरी मजिस्ट्रेट मिचनाबाद	२५)

ऐस० जे० राव पंवार होम मेम्बर गवालियर स्टेट ,, २५)
राय बहादुर सरदार बसाखासिंह जी नई दिल्ली २५)
ला० रामकुंवार जी सीनयर सब जज जालंधर २५)
सरदार भगतसिंह एडवोकेट जालंधर २५)
पी० एन० कौल बैरिस्टर दिवान भूतपूर्व देवास स्टेट लाहोर २५)
चौ० सुन्दरलाल नन्दलाल रईसान कमालिया जि० मिन्टगुमरी २५)
चौ० जीवनदास जी आनरेरी मजिस्ट्रेट झंङ २५)
सूबेदार जगरामसिंह जी कोसली २५)

सहायक

चौ० हुकमसिंह जी निखरी ११)
बा० वैकुण्ठनाथ जी दिल्ली ११)
पं० जगन्नाथ जी रेवाड़ी ११)
चौ० शिवप्रसाद सेक्रेटरी अहीर स्कूल रेवाड़ी ५)
रामप्रसाद जी झाड़सा ५)
चौ० रामजीलाल जी कन्स्टेबल नांगलोई ५)
भक्त बनारसीदास जी दिल्ली ५)
महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी। ५)
श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौ० जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ। ५)
चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपूताना ५)
श्रीमान् पं० जयराम जी शर्मा 'सनातन' इलाहबाद बैंक देहली। ५)
ला० देवकीनन्द जी फिरोजपुर ५)
महन्त प्रकाशानन्द जी मन्दिर चरणदासियान बल्लीमारान दिल्ली ५)
मि० एल. के. मिसरा इंस्पेक्टर, पोस्ट आफिस जयपुर ५)
राय बहादुर लेखनारायण सिंह जी बाङ, पटना ५)
डाक्टर कवलकिशोर सिंह जी कलकत्ता ५)
राय साहब बांकेबिहारीलाल जी बी० ए० तहसीलदार चिड़ावा ५)
सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी ५)
ला० रामचन्द्र जी वैद्य ,, ५)
राव घीसाराम जी गढ़ीचोलनी ११)
बा० शिवरामसिंह जी ,, ७)
जमादार दीपचन्द जी ,, ५)
चौ० इन्द्रसिंह जी सिरहोल १०)
ला० ओंकारमल जी कानपुर ५)

चौ० गणपतसिंह जी यादव पटौकड़ा परगना नारनौल	११)
चौ० मनोहरसिंह जी ,, पाल्हावास, रेवाड़ी	११)
ला० छोटेलाल घासीराम जी आयर्न मर्चेण्ट चावड़ीबाजार, दिल्ली	११)
चौ० दौलतराम जी पटवारी नाहरी, सूबा दिल्ली	५)
भक्त हरीचन्द जी प्रेमहाउस, ,,	,,
चौ० धर्मसिंह जी कालूवास, तहसील रेवाड़ी	,,
प० मथुराप्रसाद ग्राम जमालपुर पो० कासन, गुड़गावां	५)
श्री० दिलीपसिंह जी, कैथल मंडी, करनाल	५)
ला० सरदारीलाल जी क्लाथ मार्केट दिल्ली	११)
चौ० मूलचन्दजी गुराबड़ा जि० गुड़गावां	५)
बा० जगन्नाथ यादव सदर बाजार लखनऊ	५)
ला० अमीचन्द नरसिंहदास भिवानी	११)
सुमित्रादेवी ठिकाना ला० प्रेमशंकरजी पान का दरीबा जैपुर	५)
माई गुलाबोदेवी दिल्ली	५)

भक्ति

का

भगवद्भक्तांक

पृष्ठ संख्या १०४ कई रंगीन तथा सादे चित्रों से सुशोभित मूल्य ॥=)

मंगाने वालों को शीघ्रता करनी चाहिये। थोड़ी ही प्रतियां शेष रह गई हैं। फिर पीछे पछताना पड़ेगा।

मैनेजर

भक्ति कार्यालय रेवाड़ी।

———

महारथी प्रेस, दिल्ली।

शारदा देवी

ब्लॉक महारथी, दिल्ली की कृपा से प्राप्त।

शुद्धां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं, वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्तेस्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां, वन्देतां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्॥

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ३ | भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, जेष्ठ पूर्णिमा सं० १९८६। | अङ्क ९

भगवद्वचन।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धिया वसुः ॥ १ ॥

पवित्र करने वाली अन्नदायक शक्ति कर्म से प्राप्त होने योग्य धन की कारण रूप सरस्वती देवी देने योग्य अन्नों सहित हमारे यज्ञ को चाहे और उसको पूर्ण करे ॥ १ ॥

क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रꣳसोमस्य तर्पयात्। सनो वसून्या भरात् ॥॥ २

मनुष्य की प्रजाओं में इस इन्द्र को कौन तृप्त कर सकता है। वह मानुषी प्रजाओं से तृप्त करने को अशक्य इन्द्र हमारे यज्ञ में तृप्त होकर धन को दे ॥ २ ॥

माहि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः। दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ३ ॥

मित्र का, अर्यमा का, वरुण का दूसरों से बाधित न होने वाला दीप्त तेज हमारी रक्षा करे ॥ ३ ॥

उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! सोम तुम्हें उत्तम प्रसन्नता दे, और तुम हमें धन दो और ब्रह्मद्वेषियों को नष्ट करो॥ ४॥

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे। इन्द्र त्वादातमिद्यशः॥ ५॥

हे प्रार्थना करने योग्य इन्द्र ! हमारे इस सोम को पीजिये क्योंकि मदकारी सोम की धाराओं से सींचे जाते हो। हे इन्द्र तुम्हारा शुद्ध किया हुवा ही अन्न हमारे पास होता है॥ ५॥

इन्द्र मिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्के भिरर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत॥ ६॥

उद्गाता इन्द्र को ही बृहत् साम के द्वारा स्तुति करते हैं। अर्चन के मंत्रों सहित होता वक्थ रूप मन्त्रों से स्तुति करते हैं और शेष अध्वर्यु युजुरूप वाणियों से इन्द्र की स्तुति करते हैं॥ ६॥

इमा उ त्वा सुते सुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः। गावो वत्सं न धेनवः॥ ७॥

हे ऋचाओं से स्तुति करने योग्य इन्द्र ! सोम का अभिषव होने पर यह हमारी स्तुतियें दूध देने वाली गौएं जैसे शीघ्र ही बछड़े के समीप पहुंचती हैं तैसे ही तुम्हें प्राप्त होती हैं॥ ७॥

इन्द्रा नु पूषणा वयꣳसख्याय स्वस्तये। हुवेम वाजसातये॥ ८॥

इन्द्र और पूषा देवता को आज ही हम कल्याण रूप मित्र भाव के निमित्त अन्न और जल की प्राप्ति के लिये आह्वान करते हैं॥ ८॥

तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः समानमु प्र शꣳसिषम्॥ ९॥

हे मनुष्यो ! तुम पुत्र पौत्रादिकों के तारक, शत्रुओं को भय देने वाले, पशुओं वाले, अन्न के दाता इन्द्र की निरन्तर स्तुति करते हो॥ ९॥

यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम्। वसु स्पार्हं तदा भर॥ १०॥

हे इन्द्र ! तुमने किसी से चलायमान न हो सकने वाले पुरुष में जो धन तथा अचल पुरुष में जो धन स्थापित किया वह चाहने योग्य धन हमें दीजिये॥ १०॥

श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम्। आशिषे राधसे महे॥ ११॥

प्रसिद्ध अतिशय करके वृत्रासुर के नाशक परम वेग वाले इन्द्र को मनुष्यों में तुम्हारे बहुत से अन्न के लिये प्रसन्न करके विशेष रूप से अर्पण करता हूं॥ ११॥

भगवद्भक्ति

[ले० श्री० पूज्य भोले बाबाजी अनूपशहर]

कथा स्वामी रामानन्द जी की

रामानन्द स्वामी परम भगवद्भक्त होने के सिवाय सिद्ध और भक्ति के आचार्य हुये हैं। इन्होंने भक्ति का इतना प्रचार किया कि संसार समुद्र से उतारने के लिये अपनी सम्प्रदाय का पुल बांध दिया, जिस पर होकर सैंकड़ों जीव सहज ही में पार हुये, हो रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। अनन्तानन्द, सुरेश्वरानन्द, सुखानन्द, भावानन्द, पीपा, सेन, धन्नाजाट, रैदास, कबीर, इत्यादि जितने प्रसिद्ध भक्त हुये हैं, उन सबको इन्हीं की कृपा से उपदेश मिला था। यह स्वामी दक्षिण देश में एक संन्यासी से उपदेश लेकर स्मार्त रीति से बहुत दिनों तक भगवत् आराधन करते रहे। एक दिन यह फूल लेने के लिये एक फुलवाड़ी में गये। वहां इनको रामानुज संप्रदाय के राघवानन्द स्वामी मिले और कहने लगे 'भाई! तुम को कुछ अपने वृत्तांत की खबर है? तुम्हारी आयु अब शेष नहीं रही है, अंत का समय है अंत समय में भगवत् शरण हो जाना चाहिये। रामानन्द स्वामी कुछ न बोले और अपने गुरु संन्यासी के पास आकर सब वृत्तांत सुनाया। संन्यासी ने ध्यान धर देखा तो मालूम हुआ कि बात ठीक है रामानन्द जी की आयु का अंत आ गया। कुछ उपाय समझ में न आने से दोनों राघवानन्द की सेवा में आकर उनके शरण हुये। राघवानन्दजी ने उन पर दया करके मंत्र का उपदेश दिया और जप करने की विधि बताई। मंत्र के जप से योगाभ्यास द्वारा रामानन्द जी का प्राण दशवें द्वार ब्रह्मरंध्र में पहुंच गया और मृत्यु की घड़ी टल गई। पश्चात् राघवानन्द जी ने उनको जिला कर चैतन्य कर दिया और बहुत जीने का वरदान दिया। रामानन्द जी ने बहुत काल तक गुरु की सेवा की और तीर्थाटन को चल दिये। कुछ दिन काशी निवास किया, पंच गंगाघाट पर निवास रहा। वहां उनकी खड़ाऊं विराजमान हैं। जब यह यात्रा से लौट कर गुरु की सेवा में गये तो आचारी लोगों ने इनकी क्रिया और आचार का वृत्तान्त पूछा तो मालूम हुआ कि उन के निश्चय के अनुसार इन के आचार धर्म में भेद पड़ गया है तब उन्होंने इनको अपनी सम्प्रदाय से बाहर कर दिया, तब इनके गुरु राघवानन्द ने इनको आज्ञा दी कि तुम अपना पंथ जुदा चलाओ। तब इन्होंने रामावत नाम सम्प्रदाय चलाया, इसी को रामानन्दी सम्प्रदाय भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय में श्रीरघुनन्दन महाराज और श्रीजानकी महारानी का ध्यान और उपासना है और अन्य आचारी लोगों के समान आचार नहीं है। इनका यह सिद्धान्त है कि जो कोई भवगच्छरण हो गया उसको वर्णाश्रम का बन्धन नहीं है। भगवच्छरण होते ही सब अच्युत गोत्र समझे जाते हैं और सब का भोजन एक पंक्ति में होता है। सो यह शास्त्र के विरुद्ध नहीं है किन्तु शास्त्र के अनुसार है क्योंकि नारद पंचरात्र इत्यादिक शास्त्रों में लिखा है कि जैसे चारों आश्रम हैं इसी प्रकार भगवद्भक्ति भी आश्रम है। इस लिये सब

भगवद्भक्त एक वर्ण हैं। भागवत् में लिखा है कि जो ब्राह्मण अपने कर्मों में सावधान हो परन्तु भगवद्भक्त न हो तो उस से नीच वर्ण वाला भगवद्भक्त वरिष्ठ है। एक यह भी प्रसिद्ध प्रमाण है कि राजा युधिष्ठिर के यज्ञ होजाने के पीछे वाल्मीकि श्वपच को भगवद्भक्ति के कारण सब वर्णाश्रम वालोंसे अधिक प्रतिष्ठित माना था। बहुत प्रमाण होने से वर्णाश्रम की रीति इनकी सम्प्रदाय में नहीं है। कपिल जी का स्थान गंगासागर में लुप्त हो गया था, उस को रामानन्द जी ने निर्देश करके प्रकट किया। गुरु परम्परा इनकी रामानुज से लेकर गोविंददास तक इस प्रकार है:- १ रामानुज, २ देवाचार्य, ३ प्रधानानन्द, ४ राघवानन्द, ५ रामानन्द, ६ अनन्तानन्द, ७ कृष्णदास, ८ कील्हदास, ९ अमदास, ११ नारायणदास और ११ गोविन्ददास। गलता और रामगढ़ में इन की दो गद्दी अब तक लिखी जाती हैं।

छप्पय:-

गुरु राघवानन्द, मृत्यु से प्राण बचाये।
स्वामी रामानन्द, भक्ति का पंथ चलाये॥
आश्रम वर्ण खुदाय, गोत्र अच्युत कैलाये।
सब कूं संत जिमाय, भक्ति का मान बढ़ाये॥
श्री रघुनन्दन जानकी, इष्टदेव करि मानते।
रामानन्दी संत सब, देव न दूजा जानते॥

कथा कृष्णदास पयाहारी की

कृष्णदास जी ब्राह्मण कुल में जन्मे थे। अनन्तानन्द के शिष्य थे। यह ऐसे परम भगवद्भक्त हुए कि इन्होंने लोगों का संसार समुद्र से उद्धार किया। कील्ह, अमदास, केवलराम, हठीनारायण, पद्मनाभ, गदाधर, देवा और कल्याण इत्यादि इनके सैंकड़ों शिष्य ऐसे सिद्ध और प्रेमी भक्त हुए कि लोगों का उद्धार किया। पहिले गलता जी में योगी रहा करते थे, कृष्णदास की सिद्धता देख कर भाग गये इन्होंने पृथ्वीराज को चेताया और एक दरिद्री लड़के को राजा बना दिया। ऐसे २ इनके विलक्षण चरित्र हैं।

दो०-कृष्णदास हरिभक्ततम, पयाहारी सन्त।
कील्ह अम्र आदिक किये शिष्य प्रसिद्ध अनन्त॥

कथा गोविन्ददास जी की

नारायणदास नाभा जी का नाम है। गोविन्ददास इनके शिष्य थे। यह परम भक्त हुए। नाभा जी ने भक्तमाल सब से प्रथम इन्हीं को पढ़ाई थी। इन्हींने भक्तमाल का जगत् में प्रकाश किया।

दो०-नाभा जी के शिष्य वर, पंडित गोविन्ददास।
भक्त माल की शुभ कथा, कीन्ही जगत् प्रकाश॥

कथा विष्णु स्वामी की।

विष्णु स्वामी महाराज दक्षिण देश में ब्राह्मण कुल में परम भक्त हुए, इन्होंने भगवद्भक्ति का बहुत प्रचार किया। चारों सम्प्रदायों में जो रुद्र सम्प्रदाय विख्यात है यह स्वामी जी उस सम्प्रदाय के आचार्य हैं यद्यपि यह सम्प्रदाय प्राचीन है, परन्तु इस का प्रकाश इन स्वामी जी ने किया है। शिवजी के नाम से विख्यात होने का कारण यह है कि इस सम्प्रदाय के आदि मुख्य आचार्य शिवजी महाराज हैं क्योंकि इस उपासना का उपदेश प्रथम शिवजी ने परमानन्द मुनिको किया था। इस संप्रदाय में ईश्वर को शुद्ध अद्वैत मानते हैं और वह ईश्वर नन्द नन्दन वृन्दावन

चन्द्र गोलोक निवासी सर्वदा सात वर्ष की अवस्था वाले अपने सखाओं के साथ खेल विहार करते हैं। ब्रजभूमि और गोलोक में कुछ भेद नहीं है। इस सम्प्रदाय वालों की जो मुख्य रीति है, उस के अनुवर्ती वैष्णव गुजरात में विशेष हैं, विशेष करके वल्लभाचार्य की चलाई हुई रीति के अनुसार इस संप्रदाय की अधिक प्रवृत्ति है। यद्यपि इन दोनों की प्राचीन रीति में कुछ भेद नहीं है क्योंकि सब बालस्वरूप के उपासक हुए हैं तो भी वल्लभाचार्य जी ने कोई २ भाव अपने अंतःकरण की प्रेम की तरंग में ऐसे निकाले हैं कि बरबस चित्त को खेंचते हैं। वल्लभाचार्य की कथा में उन भावों का वर्णन करूंगा। बावालाल इसी संप्रदाय में हुये थे। आलमगीर के भाई दाराशिकोह का बावालाल पर बड़ा विश्वास था। कोई २ कहते हैं कि बावालाल माधवी संप्रदाय में थे परन्तु निश्चय करके यह इसी संप्रदाय के अनुगामी थे। विष्णु स्वामी महाराज की संप्रदाय में करोड़ों भक्त इस उपासना के प्रताप से भगवत् पद को प्राप्त हुए हैं। इनके मुख्य और विख्यात गुरु द्वारे गोकुल में और गुजरात देश में हैं। इनके गुरु तिलोचनदेव थे और इनके शिष्य लक्ष्मण भट्ट आदि थे।

दो०—सम्प्रदाय शिव का किया, विष्णु स्वामी प्रचार।
सखा सहित गोलोक पति, प्रभु के भक्त उदार॥

कथा वल्लभाचार्यजी की

वल्लभाचार्य जी परम भागवत्, प्रेमी, संप्रदाय के आचार्य संसार समुद्र से पार उतारने वाले हुये। अपनी जन्म भूमि को छोड़ कर प्रथम यह गोकुल में और फिर वृन्दावन में आये, इन्होंने भगवत् से यह प्रार्थना की कि वात्सल्य निष्ठा का संसार में प्रचार हो इसलिये प्रथम गोकुल में निवास करके भगवत् आराधन किया। इन्होंने भगवत् सेवा, पूजा और वात्सल्य निष्ठा की ऐसी रीति और पद्धति नियत की, कि इनके भाव का वर्णन नहीं हो सका। स्वप्न में भगवत् ने इनको विवाह कर लेने की आज्ञा दी। उसका कारण यह है कि जो कोई भक्त जिस दृढ भाव से भगवत् की आराधना करता है, भगवत् उसी भाव से उसे साक्षात् दर्शन देते हैं और उसे सिद्ध पद पर पहुंचा देते हैं। भगवत् ने एक ब्राह्मण को प्रेरणा की। उस ब्राह्मण ने अपनी कन्या इनको भेंट दी। विवाह होने के कुछ दिन पीछे विट्ठलनाथ महाराज ने जन्म लिया। इनकी कथा वात्सल्य निष्ठा में सुनाऊंगा। इनके सात पुत्र हुए, जिनके नाम से सात गद्दी गोकुल में अब तक विराजमान हैं। किसी गद्दी में सात बार और किसी में नव बार सेवा करने की रीति है। श्रीराधिका महारानी को स्वकीया भाव से भगवत्प्रिया जान कर आराधन करते हैं और पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण महाराज को मानते हैं। इस संप्रदाय के अलौकिक भाव की कथा कुछ कही नहीं जा सकती। जिस प्रकार बाबा नन्द और यशोदा महारानी भगवत् का लाड़ लड़ाते होंगे, उसी प्रकार गोकुल के गोसाइयों का भाव है। आंगन से घर को बहुत ऊंचा नहीं रखते, इस विचार से कि कहीं ऐसा न हो कि बालक घुटवन चलते २ गिर पड़े। शयन के समय ऊंचे, शब्द से नहीं बोलते कि कहीं सुकुमार बालक कच्ची नींद में जाग न उठे। ऐसे २ इनके अलौकिक भाव हैं। अपनी निष्ठा में इनका यहां तक पक्का और दृढ भाव है कि जिस समय भगवत् शयन करते होते हैं, अथवा वे समय होता है तो कोई मनुष्य

संपूर्ण संसार का धन चढाने वाला आजावे तो कभी मंदिर नहीं खोलते ! जयपुर के महाराज इस बात की परीक्षा कर चुके हैं। अब तक वह ही भाव रीति वर्तमान है। किसी गद्दी में पचास हजार, किसी में तीस हजार, किसी में चालीस हजार रुपये साल की आमदनी है, सब भगवत् आराधन, सजावट शोभा, सामग्री बाल स्वरूप और राग भोग इत्यादिक में उठा देते हैं और फिर भी ऋणी रहते हैं। ये गोसाईं गोकुलस्थ पदवी से विख्यात हैं। जैसे भाव इन गोकुलस्थ गोसाइयों का देखा है और सुना है, वह लिखने में नहीं आ सक्ता और उनके चेलों की जैसी भाव भक्ति गोसाइयों में है, वह भी वर्णन नहीं हो सक्ता। इस सम्प्रदाय के सेवक मारवाड़ और गुजरात में बहुत हैं। वल्लभाचार्य के कुल में बहुत पहुंचे हुये भक्त और सिद्ध हुये हैं। जो उनकी कृपा के अवलम्बन से भगवत् परायण हुये हैं, इनकी गिनती कौन कर सक्ता है। वल्लभाचार्य के भाव को ध्यान करके देखना चाहिये, उन्होंने अपने भाव के अनुसार अपना भाव विख्यात किया है। जिस जाति में बाबा नन्दराय जी थे, उस जाति में 'वल्लभ' गोप जाति को कहते हैं इसलिये इन्होंने अपने कुल को वल्लभ कुल यानी गोपकुल विख्यात किया। एक समय एक साधु ब्रज में आया और सालिग्राम का बटुआ एक वृक्ष की डाली पर टांग कर वल्लभाचार्य के दर्शनों को गया जब उनके दर्शन करके लौटा तो क्या देखता है कि बटुआ गायब है। लौट कर आचार्य जी के पास गया और सब वृत्तान्त सुनाया। वल्लभाचार्य बोले 'भाई ! तुम कैसे सेवक हो कि स्वामी को छोड़ कर इधर उधर घूमते हो ? जाओ और उसी वृक्ष पर भली प्रकार से देखो"! साधु लौट कर आकर क्या देखता है कि सैंकड़ों बटुवे उसी प्रकार के लटक रहे हैं ! साधु आश्चर्य करता हुआ आचार्य जी के पास गया और सब वृत्तांत निवेदन किया। आचार्य जी बोले 'भाई ! तुम कैसे सेवक हो कि अपने स्वामी को नहीं पहिचान सक्के'! साधु चरणों में गिर पड़ा और उनके कहने से लौट कर वृक्ष के पास आया और अपना बटुआ लटकता पाया। सालिग्राम का बटुआ लेकर साधु पूर्ण प्रेम से भगवत् आराधन में लगा। हे मंसाराम ! अभिप्राय यह है कि जैसे मूर्ख को अपने शरीर में प्रीति और अहंकार होता है इसी प्रकार उपासक को भगवत् में निष्टा और प्रीति होनी चाहिये। यह नहीं कि स्वामी डार में और सेवक बाजार में। हे मंसाराम ! इन आचार्य की बुद्धि बड़ी प्रखर थी, यह महान् पंडित थे, इन्होंने विजय नगर के राजा कृष्ण देव की सभा में शास्त्रज्ञ पंडितों को परास्त किया था। तभी से इनकी गणना वैष्णवाचार्य में होने लगी। इनको श्रीकृष्ण भगवान् का साक्षात्कार हुआ था। इनका विशेष चरित्र 'श्रीवल्लभ चरित्र नाम के ग्रन्थ में है। इनके बनाये हुये जमुनाष्टकादि षोडश ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इनके अपूर्व भावों का वर्णन नहीं हो सक्ता। यह ऊपर कह आया हूं, नीचे की कुंडली इनकी महिमा को बताती है।

कुण्डली

श्रीवल्लभ वल्लभ भये, वल्लभ कुल में चन्द।
अनुपम जिनके भाव सुनि, होत परम आनन्द॥
होत परम आनन्द, चित्त का मैल धुलत है।
होय बुद्धि अति स्वच्छ कृष्ण पद प्रेम बढ़त है॥

भोग तथा अपवर्ग, मार्ग दोनों अति दुर्लभ।
कीन्हें परम सुलभ्य, यह श्री वल्लभ वल्लभ ॥

कथा माधवाचार्य जी की।

माधवाचार्य स्वामी ब्रह्म संप्रदाय में परम भागवत्, भक्त, आचार्य थे। इन्होंने ब्रह्म संप्रदाय का प्रचार किया। यद्यपि यह संप्रदाय प्राचीन है परन्तु इन स्वामी ने इस संप्रदाय को सम्पूर्ण संसार में प्रकाशित किया और इनका नाम माधवी संप्रदाय रक्खा। इसका नाम ब्रह्म संप्रदाय इस कारण से है कि प्रथम भगवत् ने इस संप्रदाय की रीति ब्रह्माजी से वर्णन की। ब्रह्मा जी ने गुरु शिष्य की परम्परा से भक्त लोगों को उपदेश करके इसका प्रचार किया। कोई २ इस को गौड़ेय और कोई महाप्रभु सम्प्रदाय कहते हैं। उसका कारण यह है कि श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु गौड़ देश के रहने वाले इस संप्रदाय में आचार्य और नामभक्त भगवत् अवतार हुए। इन्होंने सम्पूर्ण बंगाले देश को शिक्षा देकर भगवत् संमुख किया। माधवाचार्य जी का जन्म द्राविड देश में बड़पी कृष्णगांव में ब्राह्मण वंश में हुवा। यह ग्राम कांचीपुरी से पश्चिम दक्षिण कोने पर है। इन्होंने शारीरक सूत्र और गीता जी पर भाष्य बनाया। इनका निश्चय यह है कि ईश्वर तटस्थ है। ईश्वर की प्रेरणा से माया जगत् की रचना करती है। यद्यपि इस निष्ठा में प्राचीन रीति से विष्णु नारायण का ध्यान और आराधन होता है परन्तु अब माधवाचार्य के समय से इस सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण अवतार की आराधना होती है और पूर्ण सच्चिदानन्दघन गोलोक निवासी श्रीकृष्ण स्वामी को ईश्वर मानते हैं। माधुर्य निष्ठा से भगवत् का ध्यान और चिंतवन करते हैं। यद्यपि माधुर्यनिष्ठा में युगल स्वरूप का ध्यान और चिंतवन होना चाहिये और युगल स्वरूप का ही आराधन और सेवा इस सम्प्रदाय में वर्तमान है। इस सम्प्रदाय वाले राधिका महारानी में परकीया भाव रखते हैं परन्तु ईश्वरता अद्वैतता, और पूर्ण ब्रह्मता श्री कृष्ण स्वामी में चिंतवन करते हैं। इनके भाष्य और ग्रन्थों से यह भी बात सिद्ध होती है। इस संप्रदाय में लाखों नामी भक्त और सिद्ध हो गये हैं और होते हैं। आवागमन के दुःख को दूर करने के लिए यह सम्प्रदाय एक उत्तम उपाय है। इस संप्रदाय के अवलम्ब से बिना परिश्रम ही करोड़ों महा अधम भगवत् को प्राप्त होते हैं। यद्यपि दक्षिण देश में इस उपासना का प्रचार बहुत है, बड़े २ गुरु द्वारे वहीं हैं परन्तु इस समय ब्रज और बंगाले में भी इस सम्प्रदाय का विशेष प्रचार है। वृन्दावन में कई गुरुद्वारे प्रसिद्ध और विख्यात हैं। मन्दिर गोविन्ददेव, मदन मोहन, शृंगारवट इत्यादि इन्हीं के गुरु द्वारे हैं। इनका प्रभाव प्रसिद्ध है। जिन को भगवत् के दर्शन करने की दीक्षा लेने की इच्छा होती है, वे आकर यहां दीक्षा लेते हैं। माधवाचार्य जी महाराज की विशेष महिमा कहने की आवश्यकता नहीं है, इतना कहना ही बहुत है कि इन का नाम लेकर और इन की सिद्धांत पद्धति के अभ्यास से करोड़ों महापापी भगवद्भक्त हो कर वांछित पदको प्राप्त हुये हैं और हो रहे हैं। इस संप्रदाय में हजारों गुरुद्वारे हैं, उन की परम्परा मिलना और लिखना कठिन है।

छप्पयः—

माधव भगवद्भक्त, परम विख्यात विरागी।
राधा कृष्ण पदाब्ज, मधुप ज्यों मन अनुरागी ॥

भगवद्भक्ति सिरनाथ, कीन्ह पावीन कृतारथ ।
विरच भोग कुदवाय, दिखा दिखला परमारथ ॥
पावन दक्षिण देश में, गुरुद्वारे सुन्दर घने ।
वृन्दावन शुचि नगर में, मुक्ख २ मंदिर बने ॥

कथा श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की ।

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु नित्यानन्द जी के छोटे भाई श्रीकृष्ण महाराज के अंशावतार हुये। गीता में भगवन् का वचन है कि जब धर्म का नाश और अधर्म की प्रवृत्ति होती है तब धर्म के स्थापन और अधर्म के नाश के हेतु मेरा अवतार होता है। सो जब गौड़ देश बंगाले में भागवत् धर्म और भगवद्भक्ति का लोप होने लगा और विपरीत धर्म प्रवृत्त होने लगा तब भगवन् ने वेद मार्ग स्थिर करने के लिये जैसे ब्रज में अवतार लिया था, इसी प्रकार बंगाले में शची के उदर से प्रकट हुये। सात वर्ष की उमर में केशव भट्ट काश्मीरी ब्राह्मण को क्षण मात्र के वाद में जीत कर कृपा कर के भगवद्भक्त बना दिया। एक समय जगन्नाथराय स्वामी के आगे कीर्तन करते हुये महाप्रभु प्रेम में ऐसे बेसुध हो गये कि तन्मय होकर चतुर्भुज रूप बन गये। देख कर लोग कहने लगे कि यह तो इस पुरी का प्रभाव ही है, इसमें सिद्धता ही क्या है। तब महाप्रभु ने अनुजाई सेवकादि के विश्वास और भक्ति की दृढ़ता के हेतु छै भुजा धारण करलीं। तब सब को दृढ़ विश्वास हो गया। तब से पुरी में महाप्रभु के छै भुजा स्वरूप के आज तक दर्शन होते हैं। जैसे विचित्र चरित्र इनके हैं, उनको लिखने की किसी की लेखनी में शक्ति नहीं है। अपनी वाणी शुद्ध और सफल करने के लिये दो शब्द मात्र कह करही कथा समाप्त करता हूं। इनका संक्षिप्त जीवन चरित्र भक्ति अंक ७ तथा ८ में पाठक पढ़ ही चुके हैं।

कुण्डली

भ्राता नित्यानन्द के, कृष्ण अंश अवतार ।
श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु, करन जगत उद्धार ॥
करन जगत उद्धार, देश बंगाले जावें ।
सात वर्ष के बाल, भट्ट कूं भक्त बनावें ॥
धारण की भुज चारि भक्त वत्सल जन त्राता ।
छै भुज लीं फिर धारि, नित्य आनंद लघु भ्राता ॥

कथा निम्बार्क स्वामी की ।

निम्बार्क स्वामी परमभक्त ऋषीश्वर भागवत् धर्म प्रचारक हुये। गोदावरी के पास मुंगेर ग्राम में महाराष्ट्र ब्राह्मण अरुण ऋषीश्वर की धर्मपत्नी जयन्ती के गर्भ से इन का जन्म हुआ था। यह स्वामी प्रसिद्ध सनकादिक संप्रदाय के प्रवृत्त करने वाले आचार्य हैं। यद्यपि इस संप्रदाय की परम्परा भगवत् के हंस अवतार से है परन्तु इस संसार में निम्बार्क स्वामी से प्रकाशमान हुई है। इसलिये यह संप्रदाय निम्बार्क स्वामी के नाम से विख्यात हुआ है। हंस भगवान ने इस निष्ठा का उपदेश प्रथम सनकादि को किया था, इस संप्रदाय को सनकादिक संप्रदाय कहते हैं। इस संप्रदाय के सेवकों का कथन है कि शारीरक सूत्रों पर निम्बार्क स्वामी ने भाष्य किया है, परन्तु वह इस देश में नहीं मिलता। स्वामी जी के रचे हुये स्तोत्र विशेष करके मिलते हैं। उन स्तोत्रों में उपासना की रीति और पद्धति वर्णन की है और ईश्वर, जीव, और माया का

स्वरूप बताया है। स्तोत्रों की व्याख्या विस्तार सहित है, जिस से उपासना का वृत्तांत स्पष्ट जानने में आता है, स्तोत्रों में मुख्यतर दश श्लोकी स्तोत्र हैं। उनके अनुसार इस निष्ठा का तात्पर्य निश्चय सिद्धांत यह समझ में आता है कि ईश्वर द्वैताद्वैत है। जैसे सर्प का कुंडल सर्प से भिन्न नहीं है और जल तरंग से भिन्न नहीं है इसी प्रकार यह जगत् ईश्वर से भिन्न नहीं है परन्तु नाम मात्र को भिन्न दिखाई देता है। यह ईश्वर एक पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण गोलोक निवासी हैं। माधुर्य रीति से इन का ध्यान और चिंतवन किया जाता है। माधुर्य शृंगार की एक शाखा है, इस निष्ठा का विस्तार से माधुर्य निष्ठा में वर्णन करूंगा यद्यपि इस उपासना में युगल स्वरूप श्री राधाकृष्ण का ध्यान और सेवा की रीति पुष्ट है परन्तु आदि आचार्यों के बनाये हुये ग्रन्थों से पूर्ण ब्रह्मता श्रीकृष्ण स्वामी की सिद्ध होती है और उनका ही ध्यान करना पाया जाता है। निम्बार्क स्वामी का सिद्धांत संक्षेप से यह है:-श्रीकृष्ण चरणारविन्द के सिवाय दूसरी कोई गति नहीं है, वे चरण परम गति हैं, ब्रह्मा और शिव इन चरणों को दंडवत् करते हैं। श्रीकृष्ण महाराज का स्वरूप मन और बुद्धि की तर्क से परे है, उनकी मूर्ति गूढ़ है, उनका अवतार विचार में नहीं आसक्ता, भक्तों की अभिलाषा पूर्ण करनेको वे अनेक प्रकार के अवतार धारण करते हैं। एक स्थान पर युगल स्वरूप ध्यान लिखा है, दूसरे स्थल पर केवल श्री कृष्णस्वामी का लिखा है। विचार कर देखने से यह कुछ विरोध नहीं है क्योंकि जब गोलोक स्वामी की उपासना दृढ़ होगी तो युगलस्वरूप का ही ध्यान करना उचित होगा। निम्बार्क स्वामी के अलौकिक चमत्कार बहुत से हैं उन में से एक चमत्कार यहां वर्णन करता हूं:-एक बार एक संन्यासी स्वामीजी के स्थान पर उतरा। स्वामी जी ने उसका शिष्टाचार किया परन्तु रसोई के सिद्ध करने में संध्या हो गई। संन्यासी संध्या होने के पीछे भोजन नहीं करता था। स्वामीजी ने यह सोच कर कि यदि संन्यासी भोजन नहीं करेगा तो रात भर पेट पीटता रहेगा, बिचारे को नींद भी नहीं आवेगी, इसलिये दयाके कारण आंगन के नीम्बके वृक्षपर स्वामीजी ने संन्यासी को सूर्य दिखाई दिया और उसने संतुष्ट होकर भोजन कर लिया। जब संन्यासी भोजन करके उठा तो चार घड़ी रात बीती हुई देखी संन्यासी को बड़ा आश्चर्य हुआ, तब से इनका नाम निम्बार्क करके विख्यात हुआ। अर्क सूर्य का नाम है। कोई २ इनका मुख्य नाम अर्क ही कहते हैं। इनका नामी गुरु द्वारा दक्षिण देश अरुण में है और दूसरा सलेमाबाद में है। इनके सिवाय और हजारों स्थानों पर गुरु द्वारे हैं।

कुण्डली

भगवत् प्यारे भक्तवः, स्वामी श्रीनिम्बार्क।
भिक्षुक भूखा देख कर निम्ब दिखाया अर्क॥
निम्ब दिखाया अर्क, मार्ग सनकादि चलाया।
जैसे सिंधु तरंग, ईश जग एक बताया॥
भगवद्भक्ति सिवाय, भक्त लाखों ही तारे।
स्वामी श्रीनिम्बार्क, भक्तवर भगवत् प्यारे॥

कथा शंकर स्वामी की।

शंकरस्वामी कलि में धर्म के रक्षक और भागवत् धर्म के पूर्वक, शिवजी के अवतार और वेदान्त

के आचार्य हुये। जितने अनीश्वरवादी, पाखंडी, भगवत् विमुख और दुर्बुद्धि थे, उन सब को ध्वस्त करके शास्त्रों की पद्धति पर चलाया। दक्षिण देश में राजा विक्रमादित्य के समय में इन स्वामी का अवतार हुआ, स्मार्त मत की रीतिसे दंड धारण करके संन्यासी हुये और उसी धर्मकी पद्धतिसे भागवतधर्म का प्रचार किया। मीमांसा मतवादी ब्रह्मावतार मण्डन मिश्रको वादमें निरुत्तर किया। मीमांसक कर्मको ही ईश्वर मानते हैं। पीछे मिश्र जी की स्त्री सरस्वती ने स्वामी जी से वाद किया और कामशास्त्र के संबंध में प्रश्न किये। स्वामीजी बालब्रह्मचारी, यती संन्यासी थे स्वप्न में भी इस गली में होकर नहीं निकले थे इस विषय में उनको किंचित् भी बोध न था। सरस्वती से छै महीने की मोहलत मांग कर अमरुक राजा के शहर में गये। अमरुक राजा उसी दिन मर गया था उस के शरीर का दाह होने नहीं पाया था। योग बल से उस शरीर में अपने प्राणों का प्रवेश कर के छै महीने तक स्वामी जी उसी शरीर में रहे और अमरुक शतक नाम ग्रन्थ की बहुत ललित पदों में रचना की। राजा अमरुक की सब रानियों ने जान लिया कि यह कोई योगेश्वर है राजा के देह में आगया है. इसका देह किसी गुप्त स्थान में रक्खा होगा, उस को जलवा देना चाहिये, ऐसा करने से यह शरीर बना रहेगा, पूजा का हित होगा, और हमारा सुहाग भी चिरकाल स्थायी हो जायगा। यह सोचकर रानियों ने स्वामी जी के शरीरको ढुंढवाकर जलाने की आज्ञा दी। आग लगा दी गई। थी उसी समय स्वामीजी के प्राण ने राजाका शरीर त्याग कर अपने जलते हुये शरीरमें प्रवेश किया और अग्नि की रक्षा के हेतु नृसिंह भगवान् का स्मरण किया। भगवान् ने अग्नि शीतल करदी। स्वामी जी ने चिता से निकल कर मंडन मिश्र की स्त्री सरस्वती को निरुत्तर कर दिया। मंडनमिश्र स्वामी जी के शिष्य हुये। पश्चात् स्वामी जी ने चार्वाक मत वालों को परास्त करके धर्म परायण किया। आज कल चार्वाक मत अनुगामी कोई भी नहीं दिखाई देता, सुनते हैं कि कोई २ मुसलमान अबभी चार्वाक मत के मानने वाले हैं, वे दहरिया कहलाते हैं। पीछे स्वामी जी ने सांख्य शास्त्र और हठयोग वालों को शिक्षा दी, पीछे सेवड़ों के साथ बड़ा भारी मत वाद युद्ध हुआ। निदान पहिले वाद में उनको जीत कर फिर उनकी धूर्तता, मंत्र चेटकादि को दूर किया। जब सेवड़ों ने इन्द्रजाल किया तो वह उन्हीं के सिर पर पड़ा, कुछ तो कोठों पर से गिर २ कर मर गये, कुछ नदी में डूब गये और बचे खुचों को उस समय के देशाधीश ने नावों में भरवा कर नदी में डुबा दिया। जो २ भगवत् शरण में आये, वे उपद्रव से बच गये। तात्पर्य यह है कि जो भगवत् से विमुख होता था अथवा वेद विरुद्ध चलता था, उसको विद्या के बल से, प्रभाव दिखा कर अथवा उसको बोध करा के भगवत् धर्म पर आरूढ़ किया पीछे स्थान २ पर मन्दिर, शिवालय आदि बनवाये, प्रत्येक देवता के स्तोत्र रचेऔर पूजा आदिकी रीति की शिक्षादी, उपनिषद्, गीता, शारीरक सूत्र और विष्णु सहस्र नाम इन सब पर अलग २ भाष्य की रचना की। शंकर दिग्विजय में स्वामी जी की कथा का विस्तार से वर्णन है। दिग्दर्शन मात्र उनका वृत्तांत यहां मैंने सुनाया है, निर्गुण उपासक तो यह कहते हैं कि यह स्वामी केवल निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे और सगुण का यह कथन है कि यह वैष्णव थे। स्मार्त्त सगुण उपासना को

पद्धति यह है कि अपने इष्ट को अंगी और दूसरे देवताओं को अंग मानते हैं। जिस प्रकार भगवत् की पूजा अन्य संप्रदायों में होती है इसी प्रकार इस संप्रदाय में भी पूजा, स्मरण, जप इत्यादि वैसा ही होता है। निर्गुण ब्रह्म का वर्णन किसी अन्य समय पर सुनाऊंगा। शंकर स्वामी के बहुत से शिष्य ऐसे हुये हैं जिन्होंने इस संप्रदाय का अधिकतर प्रचार किया। इनके मठ और गुरु बहुत हैं परन्तु चार शिष्यों के चार स्थान मुख्य हैं। पूर्व में गोवर्द्धन मठ, दक्षिण में सिंगेरी मठ, पश्चिम में शारदा मठ और उत्तर में ज्योशी मठ है। इन चारों मठों के क्रम से पद्मपादाचार्य, पृथिवीधराचार्य, सुरेश्वराचार्य और तोटकाचार्य ये चार शिष्य आदि मठाधीश हुये हैं,

कुण्डली

शंकर सुखकर श्रेयकर, लीन रुद्र अवतार।
पाखंडी मत खंडि सब, श्रुति मत कीन्ह प्रचार॥
श्रुति मत कीन्ह प्रचार, दूध जल कीन्हा न्यारा।
सुलभ कीन्ह हरि भक्ति, सार सिद्धांत निकारा॥
शोधा वन वेदान्त, छांटि सब झांकड़ झंकर॥
कीन्ह जगत् उद्धार, श्रेयकर सुखकर शंकर॥

छप्पय:—

शंकर शिव नरसिंह, विपिन अद्वैत विहारी।
द्वैतमत गजराज, मान मद मर्दन कारी॥
रचि अति सुन्दर भाष्य, वेद का अर्थ दिखाया।
सरल कीन्ह वेदान्त, तत्त्व परमार्थ लखाया॥
शंकर शिष्यन पाद रज, भोला शिर पर धार रे।
जिनकी कृपा कटाक्ष ते, भव ते कीन्हा पार रे॥

अनुनय

[ले० श्री० पं० रमाशंकर जी मिश्र 'श्रीपति' लखनऊ]

मेटि मरजाद, अघ ओघन समेटि, भेंट,
अमित उताप नाथ! आयों तेरी पौरि हौं॥
वासना विकार बाढ़ी वेदना अपार सुनि,
आरत पुकार दीन-बन्धु कब दौरि हौ॥
आन अवलम्ब दिनरात नहिं अन्य ठौर।
मेरे भवफन्द कौन गुन रीझि तोरि हौ।
'श्रीपति' प्रतीति नहीं, प्रीति रीति जोरिहौं कि
रूठि मुख मोरि भव-वारिधि में बोरिहौ॥

———

जिज्ञासा

[ले० श्री० महात्मा राम]

यत्सत्येन जगत् सत्यं यत् प्रकाशेन भातियत्।
यदानंदेननन्दंति तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ १॥

मनुष्य को अन्य सांसारिक बातों को छोड़ कर सबसे पहिले जिज्ञासा का स्वरूप जानना चाहिये। उसके बाद जिज्ञास्य वस्तु जानने योग्य है, तदनंतर हमें जिज्ञासु बनना चाहिये। मनुष्य अपनी अभीष्ट वस्तु को तभी प्राप्त कर सकता है जब जिज्ञासा, जिज्ञास्य और जिज्ञासु इन तीन बातों को अच्छी

तरह समझले।

जिज्ञासा- 'ज्ञातुमिच्छा जिज्ञासा' किसी भी वस्तु के जानने की इच्छाको जिज्ञासा कहते हैं। जिज्ञासा, इच्छा, कामना इन शब्दों का एक ही तात्पर्य है।

जिज्ञास्य-जिस वस्तु को हम जानने की इच्छा करते हैं वह जिज्ञास्य कही जाती है। और जानने की इच्छा वाले पुरुष को जिज्ञासु कहते हैं। यह जिज्ञासा अधिकारी भेद से दो प्रकार की है? १-व्यवहारिक २-पारमार्थिक। प्रकृति के कार्यभूत दृश्यमान पदार्थों की इच्छा को व्यवहारिक जिज्ञासा कहते हैं और उन सर्व पदार्थों के प्रकाशक जगत् की उत्पत्ति संहार करने वाले परम ब्रह्म परमात्मा के जानने की इच्छा को पारमार्थिक जिज्ञासा कहते हैं। व्यवहारिक तथा पारमार्थिक ये दोनों पदार्थ परस्पर विरुद्ध गुण स्वभाव वाले हैं। जो प्रकृति के कार्यभूत पदार्थ हैं वह तो उत्पत्ति नाश वाले तथा क्षणिक हैं और चिन्ता, शोक, मोह, तथा विक्षेप आदि महा क्लेश के स्थान हैं। ऐसे पदार्थों की इच्छा करने वाले पुरुष को उन्हीं उपरोक्त विक्षेपादि गुणों की प्राप्ति होगी। और जो पुरुष सच्चिदानन्द, अखण्ड, अनन्त तथा एक रस रहने वाले, सर्व क्लेशों से रहित परमात्मा की जिज्ञासा करता है उसको जन्म मरणादि बन्धन से छुट कर परम पुरुष परमात्मा की प्राप्ति होगी। ये दोनों पदार्थ हमारे सामने उपस्थित हैं। जिस पदार्थ की हमको दृढ़ इच्छा होगी वह अवश्य प्राप्त होगा इस में सन्देह नहीं। परन्तु इसका रहस्य यह है कि जो कुछ हम चाहते हैं उसके लिये हमको विधिवत् पुरुषार्थ अवश्य करना होगा। जैसा कि, श्रुति कहती है।

स यथा कामो भवति तत्क्रतुर्भवति। यत्क्रतुर्भवति तत् कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते॥

यह पुरुष जिस २ पदार्थ की कामना वाला होता है वह उस २ कामना के अनुकूल संकल्प वाला होता है और जिस जिस कर्म के संकल्प वाला होता है उसी कर्म के निश्चय वाला होता है और जिस कर्म के निश्चय वाला होता है उस कर्म को करता हुवा उसके फल को प्राप्त होता है यह नियम है। किसी भी पदार्थ के लिये जब तक हम दृढ़ इच्छा और प्रयत्न न करेंगे तब तक उसका फल कदापि प्राप्त न होगा। जैसे किसी के घर में खज़ाना दबा पड़ा है। परन्तु उस खज़ाने का उसे कुछ भी लाभ न हो कर निर्धन दीन पुरुष के समान दुःख में अपने जीवन को बिताता है। तैसे ही श्रेय जो कल्याण का साधन है और प्रेय पदार्थ जो सांसारिक सुख का साधन है इन दोनों प्रकार के पदार्थों के होते हुये आलस्य प्रमाद के वश पुरुषार्थ हीन मनुष्य केवल दुःख भोगते हुये पशु के समान अपने समस्त जीवन को नष्ट कर देते हैं तुलसीदास जी ने कहा है—

सकल पदार्थ हैं जग माहीं।
कर्म हीन नर पावत नाहीं॥

संसार में कोई पदार्थ ऐसा नहीं जो पुरुषार्थ से सिद्ध न हो सके। पुरुषार्थ हीन मनुष्य अपने इष्ट अनिष्ट का विचार न करके शूकर कूकरादिकों की तरह विषय भोगों की प्राप्ति में लगे रहते हैं और इसी में अपना समस्त जीवन नष्ट कर देते हैं। यद्यपि अपने अनिष्ट की इच्छा किसी को भी नहीं है तथापि अज्ञानवश अन्तःकरण की मलीनता के कारण श्रेय तथा प्रेय का विचार न करके खो,

श्री. राव बहादुर कप्तान राव बलवीरसिंह जी, ओ. बी.ई.,एम. एल. सी
प्रेसीडेण्ट श्रीभगवद्भक्ति आश्रम, व जागीरदार रेवाड़ी।

Bhakti Press Rewari.

स्त्री, धन, तथा ऐश्वर्यादि प्रेय पदार्थों को अपने सुख का साधन जान कर इनकी इच्छा करता है। जो पदार्थ नाश हो जाने वाले हैं और महा दुःख रूप हैं, अनेक शोक चिन्ता विक्षेपादि क्लेशों के स्थान हैं ऐसे किञ्चित् काल तक समीप रहने वाले धन, ऐश्वर्य, स्त्री, पुत्रादि पदार्थों में सौन्दर्य आदि गुण बुद्धि करके अविचार से मोह को प्राप्त होता है। इस महा मोह रूपी अन्धकार के कूंवे में पड़ कर अनेक जन्म जन्मान्तरों के दुःखोपरि दुःखों को भोगता है। यह मोह ही जीव को जन्म मरणादि बन्धन में ले जाता है। इसलिये मोह रूपी मृत्यु से बचने के लिये हमें सर्वथा प्रयत्न करना चाहिए।

मोहं जहि महामृत्युं देहदार सुतादिषु ।
यं जित्वा मुनयो यांति तद् विष्णोः परमं पदम् ॥

हड्डी, मांस, रुधिर, त्वचा, स्नायु, मेदा, मज्जा आदि अनेक धातुओं से संकुलित मूत्र विष्टा से परिपूर्ण अति निन्दा, ग्लानि योग्य, अपवित्र, मल के भण्डार स्त्री पुत्र तथा अपने देह में जो अभिमान है, तथा ये मेरे हैं मैं इनका हूं यह ही मोह है। इस मोह अंधकार के वश होकर के धर्म अधर्म को भी भुला देता है यह भी नहीं जानता है कि इन संबंधियों का और हमारा कभी वियोग भी होगा या नहीं इसलिये जो पुरुष मृत्यु से बचना चाहता है वह अपने शरीर तथा स्त्री, पुत्र, धनादिक पदार्थों में जो मोह है इसको महा मृत्यु रूप जान कर त्याग दे। जिसने इन शरीर आदि अनात्मक पदार्थों में मोह का त्याग किया है वह ही पुरुष विष्णु भगवान् के परम पद को प्राप्त होता, है जो हम सब देह धारी जीवों को गंतव्य तथा प्राप्तव्य है।

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।

श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुन के प्रति कहते हैं कि हे अर्जुन ! जिस स्थान को प्राप्त होकर पुनः इस संसार चक्र में यह जीव नहीं आता है वह ही मेरा परम धाम तथा वह ही मेरा वास्तविक स्वरूप है। इसलिये हे अर्जुन ! तू उसी परम पद को प्राप्त हो। सारांश यह है कि उस परम पद की प्राप्ति के लिये हमें किस प्रकार का जिज्ञासु बनाना चाहिए इसकी सरलता के लिये हम आपके सामने एक परम पवित्र आनन्द प्रद शुभ उदाहरण उद्धृत करते हैं।

वाजश्रवा के पुत्र उद्दालक ऋषी के नचिकेता नामक पुत्र ने अपने पिता के हित के लिये बाल अवस्था में मृत्यु के महान् कष्ट को सह कर यमराज को प्राप्त हो तीन वरों को प्राप्त किया। उन तीन वरों में प्रथम वर से अपने पिता के संताप को शान्त किया और दूसरे वर से स्वर्ग की अग्नि विद्या को प्राप्त किया और तृतीय वर से आत्म ज्ञान जिसको ब्रह्म विद्या कहते हैं मांगते हुवे नचिकेता ने यमराज से यह प्रश्न किया।

प्रश्न-हे धर्मराज ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुझे कृतार्थ करना चाहते हैं तो तीसरे वर से ब्रह्म विद्या का उपदेश करके मेरे संशय का निवारण कीजिये। हे धर्मराज ! इस मनुष्य के मरने पर यह आत्मा है ऐसा कोई मानते हैं और नहीं है ऐसा कोई मानते हैं और नहीं है ऐसा अनेक मानते हैं इस प्रकार के मेरे सन्देह को आप निवारण कीजिये।

उत्तर-यमराज ने कहा कि हे नचिकेता ! यह जो तैंने प्रश्न किया है इस विषय में पूर्व काल में देवता भी सन्देह को प्राप्त हुए हैं। निःसन्देह यह

आत्मज्ञान अति सूक्ष्म है इसलिये अति कठिनता से जानने योग्य है। अत एव तुम किसी दूसरे वर को मांग लो। नचिकेता ने कहा कि हे भगवन्! इस आत्मा के विषय में जब देवताओं ने भी संदिग्ध होकर अन्वेषण किया है, तथा आप भी इस विषय को अति दुर्विज्ञेय कहते हैं तो आप जैसे ज्ञाता से अन्य इस विषय का कहने वाला कौन है जिससे हम पूछें? और इस वर के तुल्य दूसरा कोई वर नहीं है जिसकी हम इच्छा करें। यमराज ने नचिकेता की परीक्षा करने के लिए मनको रंजन करने वाले प्रेय पदार्थों का लालच दिया। नचिकेता के अधिकारी पने की परीक्षा करने के लिये अनेक प्रकार के पदार्थों का वर देने को कहा। यमराज ने कहा कि हे नचिकेता! सौ वर्ष जीने वाले पुत्र पौत्रों को मांगले और बहुत से गाय, बैल, हस्ती, घोड़े, सुवर्ण आदि पदार्थ मांगले तथा पृथ्वी के मांडलिक चक्रवर्ती राज्य को ले ले और तू भी चिरकाल पर्यन्त के जीवन को मांगले। हे नचिकेता! जो इस आत्म विषयक वर के समान तू इन वरों को मानता हो तो मुझ से तू यह वर ग्रहण कर हे नचिकेता! ऐश्वर्य के साधन सदा की आजीविका को तू मांगले तथा इस पृथ्वी पर तुझे बहुत बढ़ने वाला बनाता हूं। तुझे सम्पूर्ण कामनाओं का भोग करने वाला बनाता हूं पृथ्वी पर जो जो कामनायें मनुष्यों को दुर्लभ हैं उन सबको यथेच्छ मांगले। यह रथादिक सवारियों सहित और सुन्दर वादित्रादि सहित रमणीय स्त्रियों को तू ग्रहण कर। निःसन्देह यह स्त्रियां मनुष्यों को अप्राप्य हैं। हे नचिकेता! किसी और मनवांछित वर को मांगले परन्तु मरण के अन्त में यह आत्मा है या नहीं इस विषय में तू मुझसे मत पूछ। इस प्रकार अनेक पदार्थों करके प्रलोभित किया हुआ भी महाजलहृद के समान नचिकेता किंचित् भी क्षोभ को न प्राप्त होकर बोला कि हे धर्मराज! तुम्हारे जो यह भोग पदार्थ हैं सो मनुष्य के इन्द्रियों के तेज को नाश करने वाले हैं, तथा आपने बहुत काल तक जीवित रहने को कहा है सो ब्रह्मा का समस्त जीवन भी अल्प है तब हमारे जीवन की तो क्या कथा है। हे यमराज! यह वादित्रादि सहित स्त्रियां तथा रथ, हाथी, घोड़े, गाय, बैल, आपके ही समीप रहें मैं इनकी इच्छा नहीं करता।

'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो'।

और बहुत धन करके भी इस मनुष्य की तृप्ति नहीं होती है। इसलिये मुझे धन की इच्छा नहीं है। और जीवन तो मेरा जब तक आप चाहेंगे तब तक रहेगा क्योंकि मैं आपका शिष्य हूं परन्तु वर तो मुझे वही मांगना है। हे धर्मराज! जरा (वृद्धावस्था) से जीर्ण न होने वाले आप सरीखे अमृत पुरुषों को प्राप्त होकर अपने उत्कृष्ट प्रयोजन को जानता हुआ जो परम श्रेय है उसको त्याग कर कौन ऐसा पुरुष होगा जो स्वर्गादि लोकों की अपेक्षा अति निकृष्ट मृत्युलोक में अविवेकी जनों करके प्रार्थनीय स्त्री, पुत्र, धन, ऐश्वर्यादि अस्थिर पदार्थों में रमण करेगा।

कः पंडितसन् सदसद् विवेकी श्रुतिः प्रमाणः परमार्थदर्शी।
जानन्हि कुर्यादसतोऽवलम्बं स्वपातहेतोः शिशु वन्मुमुक्षुः

जो विद्वान् पुरुष श्रुति स्मृति रूप शास्त्रप्रमाण को मानने वाला, सत्य असत्य का विवेकी, परमार्थ को जानने वाला अपने नाश का हेतु जानता हुआ अनभिज्ञ बालक के समान इन स्त्री पुत्र धनादि

पदार्थों का कौन मुमुक्षु आश्रय करेगा किन्तु कोई नहीं।

हे मृत्यु! जिस आत्म ज्ञान विषय में आत्मा कोई है अथवा नहीं? यदि है तो कहां है और कैसा है? इत्यादि अनेक प्रकार के संदेह करते हैं। इस महान् प्रयोजन के निमित्त आत्मा के निर्णय रूप विज्ञान को आप मुझ से कथन करो। इन माया रचित पदार्थों के विषय में बहुत कहने सुनने से क्या प्रयोजन? जो आत्मा विषयक अति गूढ वर है, जिसका विवेचन अति कठिन है ऐसे परम श्रेष्ठ वर को छोड़ कर जो अविवेकी मनुष्यों करके मांगने योग्य अनात्म पदार्थ हैं ऐसे निकृष्ट वर को मैं नचिकेता नहीं चाहता। हे यमराज! जिस गुह्य वर के लिये मैं आपसे प्रर्थना करता हूं वह ही वर मुझे आप कृपा करके दीजिये। इस प्रकार माया रचित अनेक पदार्थों के वर करके, नचिकेता को लोभित किया। जिन पदार्थों की प्राप्ति के लिये हम लोग अपने समस्त जीवन को नष्ट कर रहे हैं उन पदार्थों को नचिकेता ने तुच्छ जान कर त्याग दिया। आप विचार लीजिये कि नचिकेता कितना वैराग्य वाला था उसकी कितनी तीव्र जिज्ञासा थी जिसके कारण यमराज को लाचार होकर वह ही उपदेश करना पड़ा जो उसने पहले मांगा था। प्यारे पाठकगण! विचार लीजिये जब तक हम नचिकेता जैसे जिज्ञासु नहीं बनेंगे तब तक आत्मपद को पाने के अधिकारी नहीं बन सक्ते और जब तक आत्म पद के अधिकारी न होंगे तब तक जीवन में आनन्द का होना स्वप्न मात्र है।

अहेतुकीभक्ति

पीछले अंकों में पाठकगण श्रीचैतन्य महाप्रभु के जीवन की कुछ अलौकिक घटनाएं पढ़ चुके हैं। उनके जीवन का उत्तर काल बड़ी ही विचित्र स्थिति में बीता है। अपने आपको भी भूल गये हैं। दीनता की तो मानों खान ही हैं। एक समय अपने मनके भाव प्रकट करते हुये बोले।

अयि नन्दतनुज किंकरं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।
कृपया तव पादपंकजस्थितधूली सदृशं विचिन्तय॥

प्रभु कहने लगे, अहा। मैं श्रीकृष्ण के पाद पद्म की धूली के समान होकर उन की पद सेवा करूं इससे बढ़ कर और मेरा क्या सौभाग्य होगा अश्रु पूर्ण नेत्रों से स्वरूप रामराय की तरफ देख कर कहने लगे, रामराय! स्वरूप! जगत् में कितने ही मनुष्य अनेक प्रार्थना करते हैं कोई धन चाहता है, को कवित्व चाहता है, कोई सुन्दरी स्त्री को ही इच्छा करता है लेकिन मैं सरल भाव से कहता हूं कि मेरा इन सब वस्तुओं की तरफ किंचित् भी लोभ नहीं है। तब मैं क्या चाहता हूं सुनो।

न धनं न जनं न सुन्दरीम्,
कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे,
भवतु भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

हे जगदीश! मुझे अपनी अहैतुकी भक्ति दो। रामराय! भक्ति तो इतनी दुर्लभ नहीं है

लेकिन अहेतुकी भक्ति अति दुर्लभ है। क्या जगत् में अहेतुकी भक्ति है ? हे नाथ ! क्या मेरे भाग्य में भी कभी अहेतुकी भक्ति होगी ? कब आप में मेरी स्वार्थ शून्य भक्ति होगी ? कब-

नयनं गलदश्रुधारया, वदनं गद्गद रुद्धया गिरा।
पुलकै निचितं वपुः कदा तवनाम ग्रहणे भविष्यति ॥

हे नाथ ! कब तुम्हारे नाम श्रवण मात्र से मैं विगलित होऊंगा ऐसे कहते कहते रुदन करते हुये व्याकुल होने लगे, फिर थोड़ी देर चुप रह कर कहने लगे कैसा आश्चर्य है। हे नाथ ! आपको ठगने की चेष्टा करना निष्फल है, कारण आप अन्तर्य्यामी हैं। ये जो मैं क्रन्दन करता हूं सो किस लिये ? रामराय ! मैं जो इतना क्रन्दन करता हूं सो क्या कृष्ण के निमित्त करता हूं या कोई अपने स्वार्थ साधन के लिये ? नहीं, कृष्ण के लिये बिल्कुल नहीं केवल अपने लिये ही करता हूं। मैं भक्ति से वञ्चित् हूं इसलिये रोता हूं। अतएव मैं मेरे दुःख के कारण रोता हूं इसमें कृष्ण प्रेम की तो गंध मात्र भी नहीं है। मैं मैं करते करते मेरा जीवन ही निष्फल व्यतीत हो गया।

ऐसे कहते कहते श्रीकृष्ण प्रेम की स्फूर्ति होने लगी। तब पहिले जो कह रहे थे सो सब एक दम भूल कर स्वरचित पद गाने लगे।

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत्सर्वं गोविंद विरहेण मे॥

तब अति कातर हो श्रीकृष्ण से 'मुझे दर्शन दो, दर्शन दो, कहते हुये भिक्षा मांगने लगे। फिर अचानक चमक उठे। पहले जो विचार कर रहे थे कि उनका रोना कृष्ण के लिये नहीं अपने लिये है, वही भाव फिर उदय हो आया। फिर कहने लगे।

न प्रेमगन्धोऽस्ति दरापि मे हरौ।
क्रन्दामि सौभाग्यमदं प्रकाशितुम् ॥
वंशी विलास्याननलोकनं विना।
विभर्म्यि यत् प्राण पतंगान् वृथा ॥

प्रभु की अब तक बराबर अर्ध बाह्य दशा थी न तो पूर्ण होश ही था और न पूर्ण विह्वल भाव। श्लोक पढ़ कर फिर कहने लगे।

स्वरूप ! रामराय ! तुम लोग समझते होगे कि मुझे कृष्ण प्रेम है, तुम देखते हो कि मैं 'कृष्ण' 'कृष्ण' कह कर रुदन कर रहा हूं लेकिन वास्तव में ऐसी बात नहीं है। यदि मेरे में कृष्ण प्रेम है तो मैं पतंग की तरह जल कर भस्म क्यों नहीं हो जाता हूं मैं कृष्ण को नहीं देख रहा हूं और मर भी नहीं रहा हूं, यही स्पष्ट प्रमाण है कि मेरे में कृष्ण प्रेम की गंध मात्र भी नहीं है।

मनुष्य को प्रतिदान की इच्छा शून्य प्रेम हो नहीं सकता। केवल विशुद्ध अकैतव प्रेम जो किंचित् मात्र भी प्रार्थना नहीं करता उसको भी नहीं हो सकता। यदि सौभाग्य वश कभी हो जाय तब फिर उसको कृष्ण विरह नहीं हो सकता। ऐसे अनुगत जनों का कृष्ण कभी त्याग नहीं करते और यदि किसी कारण से त्याग करदें तब वह व्यक्ति उसी क्षण प्राण त्याग कर देता है। अतएव स्वरूप ! रामराय ! मेरे में कृष्ण प्रेम नहीं है। यदि मुझ में प्रेम होता तो कृष्ण अवश्य मेरे पास रहते। यदि किसी कारण से वे मुझे त्याग देते तो उसी क्षण मैं पतंग की नाईं जल कर भस्म हो जाता। लेकिन देखो ! मैं तो मर नहीं रहा हूं।

मेरे नेत्रों में तुम जो जल देख रहे हो उसे

देख कहीं धोखे में न आजाना। ये नेत्रों का पानी कृष्ण विरह के लिये नहीं है, नहीं तो मैं मर जाता। ये अश्रुपात तो केवल लोगों को अपना सौभाग्य दिखाने के लिये है कि मेरे में कृष्ण प्रेम है, मैं बड़ा भाग्यवान् हूं।

यह कह कर एक दीर्घ श्वास छोड़ कर फिर बोले-"मैं सर्वदा कृष्ण से कपटता करता रहा हूं। यदि कृष्ण मेरे पर कृपा नहीं करते हैं तो उनके प्रति दोषारोप करता हूं"।

प्रभु की उपरोक्त बातों से पता लगता है कि भगवत् में प्रेम क्या वस्तु है एवं जीव के लिये उनका भजन कितना कठिन कार्य है। अनेक कष्ट से चक्षुओं में दो बून्द जल आता है कि तुरन्त दम्भ की सृष्टि होने लगती है। समझने लगते हैं कि हम बड़े भक्त हो गये। फल यह होता है, कि पहिले जो कुछ भक्ति थी उससे भी हाथ धो बैठते हैं।

जीव के लिये उपाय ही क्या है? तुम मन में समझते हो कि तुम्हें भगवान् का कुछ प्रेम हुआ है कारण उनकी कथा (चर्चा) तुम्हें अच्छी लगती है। हृदय मंदिर में उन्हें न पाकर तुम व्यथित होते हो इसका क्या प्रमाण है? तुम 'कृष्ण' बोल कर रोते हो सत्य, लेकिन यह तुम्हारा प्रेम का क्रन्दन नहीं है। कारण शास्त्र कहते हैं कि कृष्ण विरह होने से जीव मर जाता है। किन्तु तुम तो अच्छी तरह हो मरते तो नहीं? तब रोते तो हो किन्तु किस लिये? कृष्ण प्रेम के लिए, या प्रतिष्ठा के लोभ से! अर्थात् लोग तुम्हें बड़ा भक्त कहेंगे इसी लिये न? कृष्ण प्रेम के लिये तुम नहीं रोते हो, यदि ऐसा होता तो तुम बचते ही नहीं। कृष्ण-प्रेम-मुग्ध जीव उनका विरह सहन नहीं कर सकता अर्थात् विशुद्ध कृष्ण विरह होने से उनको उसी समय उपस्थित होना ही पड़ेगा। जब कृष्ण नहीं आते हैं तब समझलो कि तुम्हारे मन का दुःख ठीक कृष्ण प्रेम जनित नहीं है।

(अमिय निमाई चरित्र से अनुवादित)

नन्द-कुमार

[ले० श्री मदन गोपालजी सिंहल मेरठ]

वोही हैं रक्षक नन्द-कुमार।
जो अपने भक्तों की सुनकर छोटी सी भी टेर।
आते पाओं शीघ्र दौड़ते करते नहीं अबेर॥
भक्त हैं जिन के जीवन प्रान।
भक्त की रखते हैं जो आन।
न जिन को कोई भक्त समान॥
और भक्तोंके सब पर जो निज कर धरते सरकार॥वोही०
जिसने कौरव राणा की सब मेवों को त्याग।
खाया था बहु प्रेम से भक्त विदुर घर साग॥
नित्य जो रहें भक्त वश में।
न्हाते नित्य प्रेम रस में॥
भक्त की बसते नस नस में।
अवगुण जो निज भक्त के लखें न लाख हजार॥ वोही०
मैया तक देती नहीं बिन मांगे से क्षीर।
बिना कहे पर भक्त की हरते जो भवपीर॥
प्रभु हैं जो करुणा आगार।
भरे जो भक्तों के भंडार॥
जो करते भक्तों का उद्धार।
'मदन' जरा ही खटकाने से खुलता जिनका द्वार॥वोही०

गोरक्षा के प्रश्न की व्यापकता

[ले० श्री० गंगाप्रसाद जी अग्निहोत्री जबलपुर]

सबी सन् १९२१ की मनुष्य गणना ने यह बात प्रकट की है कि भारत में ३२ करोड़ जन बसते हैं। इस ३२ करोड़ जनता में हिन्दू, मुसलमान और ईसाई आदि जातियों तथा तदन्तर्गत अनेकानेक सम्प्रदायों के लोग हैं। इन लोगों में फिर वे चाहे धनवान् हों वा दरिद्र, चाहे पंडित हों वा मूर्ख, ऐसा एक भी जन नहीं मिलेगा जो अपने जीवनाधार सात्विक भोज्यान्नों तथा गव्य पदार्थों के लिये गोकुल का ऋणी न हो। जो थोड़े से लोग अज्ञान वश गोवध को स्वर्ग सोपान मानते हैं उनके लिये यह बात उतनी लांच्छनीय नहीं है जितनी कि गोकुल को पद पद पर माता कहने वाले हिन्दू लोगों के लिये यह बात लांच्छनीय है कि उनके सब प्रकार समर्थ होने पर भी उनके जीवन सर्वस्व गोधन का भीषण संख्या में प्रति वर्ष वध द्वारा नाश किया जाता है।

जो भारतवासी लोग गौ को माता मानते हैं, उनके सब प्रकार समर्थ होने पर भी गोकुल का नाश वध द्वारा भयंकर संख्या में क्यों किया जाता है? इस प्रश्न का उत्तर बहुत ही सहज और सरल है। उक्त प्रश्न का उत्तर यही है कि भारत की गो भक्त जनता इस बात को सर्वथा भूल गई है कि वह अपने अस्तित्व के लिये गोकुल की कितनी और कहां तक ऋणी है। इस समय जो थोड़े से भारत वासी अंगरेज़ी विद्या के प्रभाव से बड़े वेतन की सरकारी नौकरियां पागये हैं वा जो लोग वकालत, बैरिस्टरी, डाक्टरी आदि करके यथेष्ट धन कमा लेते हैं, उनमें इने गिने लोगों को छोड़, अधिकांश लोग इस बात की क्षण भर के लिये भी चिन्ता नहीं करते कि हम लोग अपने इन सुख समाधानों, आमोद-प्रमोदों और मान प्रतिष्ठाओं के लिये गोकुल के कहां तक और कितने ऋणी हैं। जिस प्रकार भारत का साक्षर जन समूह गोकुल के उपकारों की उपेक्षा कर कृतघ्न बन रहा है, ठीक उसी प्रकार भारत का धन धान्य सम्पन्न वणिक् समाज भी गोकुल की घोर उपेक्षा कर रहा है। भारत का वणिक समाज एक क्षण भर के लिये भी इस बात पर विचार नहीं करता कि जिस शैली से वह इस समय व्यापार कर रहा है, उससे केवल भारत की श्री का ही नाश नहीं हो रहा है, किन्तु भारत श्री की जननी गोमाता के वंश का भी नाश हो रहा है। यह परिस्थिति निस्सन्देह बहुत ही हानिप्रद और निन्दनीय है।

इस समय जो भारतीय नाना प्रकार के धान्यों, तन्तुओं, बीजों और अन्यान्य उद्भिज पदार्थों को बेच कर लखपती और करोड़पती बने हैं, क्या कभी वे इस बात को सोचने और समझने की भी चेष्टा करते हैं कि आज से ५० वर्षों के पूर्व भारत की धरती जिस प्रकार के पौष्टिक,

सुस्वादु और रस सम्पन्न धान्य तथा ढाके की मलमल को बनाने वाली उत्तम कपास जितनी अधिक मात्रा में उत्पन्न करती थी वैसी और उतनी वह आज क्यों नहीं पैदा कर सकती ? इस प्रश्न का एक मात्र यह उत्तर हो सकता है कि भारत के वर्तमान वणिक समाज ने भारत के वार्ता धर्म का घोर अपमान कर उसे सर्वथा भुला दिया है। भारत के जिन प्राचीन आर्यों ने अपने समय के भारत को संसार समादृत और जगत् मान्य बनाया था उन लोगों ने उसे वैसा वार्ता धर्म की कार्य कारण परम्परा से ही बनाया था। कहना नहीं होगा कि गोपरिपालन, कृषि और वाणिज्य इन तीनों की कार्य कारण परम्परा बहुत ही घनी और अन्योन्याश्रित है। पृथम का निरादर या उपेक्षा कर कोई दूसरे को सम्पन्न नहीं कर सकता, और न तीसरे के द्वारा देश को ही श्रीसम्पन्न बना सकता है। जो थोड़े से भारतवासी इस समय अपने आपको विद्या, व्यवसाय और राजनीति के क्षेत्रों में अग्रगण्य घोषित कर रहे हैं, वे एक क्षण भर के लिये भी यदि स्थित-प्रज्ञ होकर विचार करें, तो तत्क्षण इस बात का जान सकते हैं कि भारत के वार्ता धर्म की उपेक्षा कर वे भारत का पुनरुत्थान कभी नहीं कर सकेंगे। इस भारी भूल के कारण भारत के पुनरुत्थान में जो अवांछनीय विलम्ब हो रहा है उसके लिये सब श्रेणियों और सब सम्प्रदायों के नेतागण दायी और दोषी हैं। इस दोष को मिटाये विना वे लोग अपने अपने अभिप्रेतार्थ में कभी कृतकार्य नहीं हो सकेंगे। जब वे लोग अपने अपने अभीष्ट उद्योगों के साथ साथ भारतीय वार्ता-धर्म का यथेष्ट आदर सत्कार करेंगे तभी भारत का कृषक वर्ग सम्पन्न होकर उनकी सहायता करने में समर्थ हो सकेगा। भारत के कृषकवर्ग को समर्थ और समझदार बनाये विना भारत के मुट्ठी भर साहूकार और सधन नेतागण भारत को संसार समादृत कदापि नहीं बना सकेंगे। इस बात को उन्हें ध्रुव-सत्य मान कर अपने २ सामर्थ्य के अनुसार वार्ता धर्म का आदर करना प्रारम्भ कर देना चाहिये।

भारत के जिन नेताओं की यह समझ है कि हम लोग स्वराज्य प्राप्त करने के पश्चात् वार्ता धर्म की उन्नति कर लेंगे उनकी यह समझ निस्सन्देह विपरीत और घातक है। ऐसा न कभी भूत काल में ही हुआ है और न वर्तमान काल में हो सकता है।

वार्ता धर्म के प्रथम सोपान शास्त्र विहित गोपरिपालन का प्रचार भारत के वे नेता बहुत सरलता और सुगमता से कर सकते हैं जो डिस्ट्रिक्ट-बोर्डों, लोकलबोर्डों, म्युनिसिपलीटियों, कोआपरेटिव सोसायटियों और प्रान्तिक राजपरिषदों के सदस्य या पदाधिकारी हैं जो नेतागण थोड़ासा परिश्रम और धन खर्च करना सह सकते हैं, वे गोपरिपालन की शिक्षा के प्रचार कार्य को बहुत सुगमता के साथ कर सकते हैं। हां वे नेतागण कुछ नहीं कर सकते जो न तो कष्ट सहिष्णु ही हैं और न धन खर्च करने में ही उदार हैं। भारत में इस समय ऐसे नेतागण विद्यमान हैं जो पाश्चात्य जगत् के देशों में भ्रमण कर वहां के गोधन की सुदशा को स्वयं देख आये हैं वा जिन लोगों ने वहां के वर्तमान गवायुर्वेद का अध्ययन कर वहां के गोधन की समुन्नत दशा का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। कहना नहीं

होगा कि जब तक ये भारतीय नेतागण पाश्चात्य जगत् की पयस्विनी गौओं को अपने नेत्र पुटों में ही बन्द किये रहेंगे या पुस्तकों अथवा सामयिक पत्रों में ही उनका गुण गान करते रहेंगे, तब तक भारत के पुनरुत्थान की नींव का सुदृढ होना असम्भव ही बना रहेगा। इस असम्भव को सम्भव बनाना भारतीय नेताओं के बायें हाथ का खेल है। ऊपर संक्षेप में जो कुछ लिखा गया है उससे यह बात स्पष्ट जानी जा सकती है कि भारत में इस समय गोरक्षा का प्रश्न बहुत गुरुतर प्रश्न है और उसे सुलझाने तथा सम्पन्न करने के लिये प्रत्येक समझदार और समर्थ भारतवासी दायी है। यदि वह अपने इस ऋण से अपने को उऋण नहीं करना चाहता तो उसे भारत की पुण्यभूमि में रहने का कोई अधिकार नहीं है। हां, यह बात सत्य है कि इस ऋण और दायित्व का ज्ञान बहुत कम लोगों को है। जिन समर्थ लोगों को इस बात का ज्ञान नहीं है उनमें उसका प्रचार करना भारत के नेताओं का सर्व प्रथम कर्तव्य-धर्म है।

भारत के जो नेतागण अपने माथे के गोकुल ऋण को पिंजरा पोलों तथा गोशालाओं के संचालकों तथा सूत्रधारों पर रख कर अपने को उऋण मानते हैं वे बड़ी भारी भूल कर रहे हैं। क्योंकि इस समय भारत में जो पिंजरापोल और गोशाला आदि संस्थाएं हैं उनके संचालकों में ऐसे बहुतही थोड़े लोग हैं जिनको शास्त्र विहित गोपरिपालन के तत्व और महत्व का यथार्थ और यथेष्ट ज्ञान है। यही कारण है कि उन अल्प संख्यक लोगों द्वारा गोरक्षा का प्रश्न सुलझने नहीं पाता। गोरक्षा का प्रश्न जितना गुरुतर और व्यापक है उतनी ही मात्रा में जब वह गुरुतर और व्यापक बनाया जायगा तभी उससे कार्य सिद्धि होगी। गो-रक्षा के प्रश्न को पूर्ण रूप से सफल बनाने वाले थोड़े से उपाय नीचे लिखे जाते हैं। प्रार्थना है कि भारत के हितैषी और गोभक्त नेतागण उन पर उसी प्रकार ध्यान देने और उन्हें स्वीकृत प्रस्तावों का रूप देने की कृपा करें जिस प्रकार वे अपने व्यक्तिगत उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयत्न करते रहते हैं।

(१) भारत भर की पिंजरापोलों और गोशालाओं के संचालकों को उचित है कि वे लोग मिल जुल कर अपने प्रान्त के शिक्षा विभाग के मंत्री से इस बात का अनुरोध और आग्रह करें कि वे प्रान्त भर की प्राथमिक और माध्यमिक पाठशालाओं में गोपरिपालन और कृषि की शिक्षा को अनिवार्य कर देने की कृपा करें।

(२) भारत भर की पिंजरापोलों और गोशालाओं के संचालकों को उचित है कि वे लोग अपने अपने प्रान्त के शिक्षा विभाग के डायरेक्टर महोदय से इस बात का आग्रह और अनुरोध करें कि मध्य प्रदेश के शिक्षा विभाग ने गोपरिपालन विषयक जिन पुस्तकों को पुरस्कार रूप में देने के लिये स्वीकृत किया है उन पुस्तकों का प्रचार उनके अधीनस्थ कर्मचारी भी अवश्य ही करें और उनके पठन पाठन की ओर वे लोग विशेष रूप से ध्यान दें।

(३) भारत भर की पिंजरापोलों और गोरक्षण संस्थाओं के संचालकों को उचित है कि वे लोग अपने अपने प्रान्त भर के धनी मानी सेठ साहूकारों और जमींदारों से इस बात का आग्रह करें कि वे लोग अपने यहां के मांगलिक और

अन्यान्य कार्यों के समय एकत्र हुई जनता में गोसाहित्य का प्रचार उन लोगों में भी किया करें जो लोग उन लोगों के पास व्यवसाय वश आते जाते रहते हैं।

(४) भारत भर की पिंजरापोल और गोरक्षण संस्थाओं के सूत्रधारों को यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे लोग अपनी अपनी संस्थाओं में एक आदर्श गोशाला अवश्य ही स्थापित करें और उसका संचालन गवायुर्वेद के अनुसार कर भारतीय गोधन की उन्नति और वृद्धि करें।

(५) भारत भर की पिंजरापोल और गोरक्षण संस्थाओं के संचालकों को यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे लोग अपने अपने प्रान्तों के डिस्ट्रिक्टबोर्डों के चेयरमैनों से, म्युनिसिपैलिटियों के प्रेसीडेन्टों से और कारपोरेशनों के मेंबरों से यह अनुरोध और आग्रह करें कि वे लोग अपने अपने अधिकारों की पाठशालाओं में शास्त्र विहित गोपरिपालन की शिक्षा के देने का यथेष्ट प्रबन्ध करें। साथ ही अपने अपने जिले के समस्त गांवों के साक्षर किसानों में गोसाहित्य का प्रचार पूर्ण रूप से करें। डिस्ट्रिक्टबोर्डों के पदाधिकारी और सदस्यगण इस काम को करने से ही अपने अस्तित्व को उपयोगी और सार्थक बना सकते हैं। इस काम को यदि वे लोग नहीं करते तो उनका अस्तित्व अजागल के समान ही है।

(६) भारत भर की पिंजरापोल और गोरक्षण आदि संस्थाओं के संचालकों को उचित है कि वे अपने प्रान्त भर की सनातन धर्म सभाओं, हिन्दू-सभाओं, आर्य समाजों, प्राणी और जीव-दया समाजों आदि के सूत्रधारों से इस बात का आग्रह करें कि वे लोग अपने अपने महोपदेशकों, उपदेशकों, प्रचारकों और भजनोंको द्वारा गोपरिपालन की शिक्षा का नगर नगर और गांव गांव में प्रचार करावें और साथ ही उनके द्वारा साक्षर जनता में गोसाहित्य का प्रचार करावें।

(७) भारत भर की पिंजरापोल और गोरक्षण आदि संस्थाओं के संचालकों को यह आवश्यक है कि वे लोग अपने अपने प्रान्त भर के सब पत्रिकाओं के संपादकों से यह आग्रह करें कि वे लोग अपने अपने पत्रों में गोपरिपालन की शिक्षा के प्रचार के विषय में धारा प्रवाह रूप से लेख लिख कर जनता में गोपरिपालन की रुचि को पैदा करें।

उक्त विषयों का पालन जब पूर्ण रूप से किया जायगा तभी भारत के नेताओं को यह कहने का अधिकार होगा कि हम लोग भारतीय गोधन की रक्षा के लिये उसी व्यापक मात्रा में प्रयत्न कर रहे हैं जो गोधन की रक्षा के लिये अत्यन्त आवश्यक है। भारत सरकार इस समय भारत के गोधन और कृषि की उन्नति के लिये जिस प्रकार से और जितनी सहायता दे रहा है उसे स्वीकृत कर भारत के धनवान् गोभक्तों और विद्वान् नेताओं को उचित है कि वे लोग भी अपनी अपनी आर्थिक मानसिक और वाचिक सहायता को उदारता पूर्वक प्रदान कर इस गुरुतर कार्य को सम्पन्न करें। सरकार और जनता की सम्मिलित सहायता से ही भारत के वार्ता धर्म का सुधार और उत्कर्ष सम्भव है। भारत का उन्नत वार्ता धर्म ही भारत के पुनरुत्कर्ष का बीज मंत्र है।

जिन गोभक्तों, सनातन धर्म्म के महोपदेशकों

और पत्र संपादकों ने महात्मा गांधी की भूल पर हाहाकार मचाया और उनकी पथ भ्रष्टता को घोषित करने में आकाश पाताल को एक कर दिया, उन सबकी सेवा में मेरी यही विनम्र प्रार्थना है कि वे लोग गोरक्षा के प्रश्न को यथेष्ट व्यापक रूप से गोपरिपालन की शिक्षा का प्रचार करेंगे तभी यथार्थ और यथेष्ट गोरक्षा होगी। एक दिन की चिल्लाहट, या थोड़े से विपरीत बुद्धि गोरक्षों के अल्प स्वल्प प्रयत्नों से गोरक्षा कभी नहीं हो सकेगी। सारांश गोरक्षा का प्रश्न जितना व्यापक है, उतना ही व्यापक तदर्थ उद्योग और परिश्रम करना होगा। यूरोप और अमेरिका वालों ने असंख्य धन खर्च करके अपने देशों को दुधार गौओं से भर दिया है। भारत में अभी इतने धनवान् हैं, जो वस्तुस्थिति को समझ लेवें तो गोधन के सुधार और उत्कर्ष में यथेष्ट धन खर्च कर सकते हैं। जो लोग अपनी मिलों में गोवंश का चमड़ा और चर्बी खर्च करते रहते हैं, वे लोग गोरक्षा में धन नहीं खर्च करेंगे तो उनकी मिलें अवश्य ही बंद हो जायगी। उन्हें अपनी मिलों को चलाते रहना है तो गोरक्षा में भी मुक्त हस्त होकर धन खर्च करते रहना चाहिये।

शुभाशुभ फल निरूपण

एक शिष्ट पुरुष ने बीमारी के अवसर पर अपने मित्र को पत्र द्वारा जो उपदेश लिखा है उसे ज्यों का त्यों भक्ति के पाठकों के लाभार्थ उद्धृत करते हैं।

(सम्पादक)

आपकी सट पट (बीमारी) का सब हाल चाल सुना। बीमारी से किसी प्रकार भी घबराना नहीं चाहिए। बीमारी क्या है? यह अपने किये हुये कर्मानुसार भगवान् द्वारा प्रेरित भोग है। भगवान् स्वयं अपने आप किसी को सुख या दुःख नहीं देते, परन्तु लोग जो सुख दुःख पाते हैं, सो कौन देता है? देने वाले तो भगवान् ही हैं, परन्तु जीव जैसे कर्म करता है उसे तदनुसार भोग मिलता है। कर्म स्वयं तो जड़ रूप है और वह स्वरूप से नाश भी हो जाता है, आप फल नहीं देता परन्तु निष्फल भी नहीं जाता। बीज रूप से संस्कार छोड़ जाता है। तदनुसार भगवान् द्वारा उसका फल मिलता है। जैसे कोई चोरी करता है तो चोरी रूप कर्म स्वयं दण्ड नहीं देता परन्तु राजा उस चोरी का फल रूप दण्ड देता है। यदि आप कहें, "भगवान् दण्ड देने की चेष्टा क्यों करते हैं? एवं दण्ड न देने से उनको क्या असुविधा है? इधर (दण्ड न दें तो) लोगों को आराम या सुख हो सकता है। इसके दो उत्तर हैं। (१) यदि अशुभ कर्मों का फल दुःख न दिया जायगा तो शुभ कर्मों का फल सुख भी नहीं दिया जा सकता (न्याय से) जब शुभ कर्मों का फल सुख न मिलेगा तो लोग शुभ कर्म करेंगे ही क्यों? लोगों की शुभ कर्म में रुचि भी नहीं रहेगी। इसका फल यह होगा कि संसार में सब ही दुष्कर्म करने लग जावेंगे और बड़ी भारी अशान्ति फैल जायगी। इसलिये कोई भी समझदार यह न चाहेगा कि भगवान् शुभ कर्म का फल सुख और अशुभ कर्म का फल दुःख न दें। (२) दूसरा हेतु यह है कि जीव अशुभ कर्मों का फल दुःख भोग कर अशुभ कर्मों के संस्कारों से

-मलिनता से-मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है। जैसे:— किसी कपड़े या बरतन पर मैल चढ़ जाता है तो यदि वस्त्र को जब तक पछाड़ा न जाय और बरतन को ईंट या रोड़े से घिसकर मजा न जाय तब तक साफ नहीं होता और वह मैला कुचैला बदसूरत रहता है परन्तु पछाड़ने से मांजने से निर्मल हो जाता है वही दशा जीव की है। भगवान् इस जीव को पवित्र, निर्मल बनाने के लिये उसको उसके कर्मानुसार सुख दुःख देते हैं। जैसे: शरीर में कहीं फोड़ा या घाव होने से तकलीफ होती है। उसको चिराया या कटवाया जाय तो एक दफा तकलीफ़ कुछ बढ़ती है, परन्तु आगे चल कर आराम हो जाता है। यदि चिराया या कटवाया न जाय तो तकलीफ़ बहुत ज्यादा बढ़ कर उसकी मृत्यु भी हो सकती है इसी प्रकार यह भी पाप कर्म रूप फोड़े को भोग रूप चीरा लगवा कर निरोग शुद्ध होना है। इसी लिये भगवान् जीवों के लाभ के लिये ही रोगादि की उत्पत्ति करते हैं। जगत् में जो कुछ भी सुख या दुःख रूप में प्राप्त होता है सो सब भगवान् की मरजी से ही होता है। भगवान् का किसी से कुछ भी द्वेष तो है ही नहीं, यदि कोई जीव भगवान् से द्वेष भी करता है तो भी भगवान् तो उससे द्वेष नहीं करते, वरन् उसका हित ही करते हैं। मनुष्य अपने हित को (अर्थात् किस बात से हित होगा) स्वयं जितना नहीं जानता उस से अधिक भगवान् जानते हैं, क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं, त्रिकालज्ञ हैं, और जीव अल्पज्ञ है। इस कारण से भी विश्वास करना चाहिये कि भगवान् मेरे लिये जो कुछ भेजते हैं सो सब मेरे हित के लिये ही भेजते हैं। किसी अन्य को सुख और अपने को दुःख भेजा देख कर भी चिन्ता, शोक, कष्ट नहीं करना चाहिए। जैसे:- एक अस्पताल में अनेक रोगी हैं। वहां का प्रधान डाक्टर किसीको निराहार रखता है, किसीको साबू, किसीको लुखा फुलका, किसी को फल, किसीको दूध और किसी को मीठा देने की व्यवस्था करता है। यदि इसमें कोई रोगी दुःख मानता है। कि मेरे को निराहार रखता है और दूसरों को अच्छा भोजन देता है तो रोगी की भूल है। प्रधान डाक्टर जिसके लिये जो कुछ भी व्यवस्था करता है सो उसके लिये हितकर है। यही अवस्था हम लोगों की है। यदि संसार में भगवान् हमें दुःख रोग आदि भेजते हैं और दूसरों को सुख भेजते हैं तो उचित और न्याय ही है यह समझ कर प्रसन्न रहने से रोग या दुःख घटता भी नहीं है बलटा कष्ट बढ़ता है, परन्तु प्रसन्न रहने से रोग घटता हुआ देखा जाता है, इस न्याय से भी रोग की प्राप्ति में व्याकुल नहीं होना चाहिये।

यदि इस बात का भय हो कि रोग से शरीर नाश हो जायगा तो भी चिन्ता करने की बात नहीं क्योंकि आयु की अवधि समाप्त हुये बिना शरीर नाश नहीं हो सकता और आयु की अवधि समाप्त हो गई है तो नाश होने से कोई बचा नहीं सकता। आयु की अवधि एक दिन अवश्य समाप्त होने वाली है। यदि निरोग अवस्था में आयु की अवधि समाप्त हो गई तो तुरन्त ही मरना होगा। अवधि से अधिक एक क्षण भर भी शरीर रहना सम्भव नहीं। फिर किस लिये चिन्ता होती है ? गीता अध्याय २ श्लोक २६, २७ * को बारंबार विचारना और समझना चाहिये।

---

* अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

मनुष्य का अचानक मरने की अपेक्षा बीमार रह कर मरना अच्छा है, क्योंकि बिना नोटिस के वारण्ट आने की अपेक्षा नोटिस मिल कर वारण्ट आना अच्छा है जिसमें अपनी रक्षा का कुछ उपाय करने का मौका मिल जाता है। यदि मृत्यु के पूर्व ही बीमारी प्राप्त हो गई तो अपने कल्याण के लिये यत्न करने का अच्छा अवसर मिलगया (अर्थात्) पहले से ही नोटिस मिल गया, भगवान् का भजन ध्यान करने की चेष्टा करनी चाहिये।

यदि इस बात का भय हो कि शरीर छूटने के बाद न मालूम अन्य किस नीच योनि की प्राप्ति होगी तो उसका उपाय भी भगवान् चिन्तवन ही है। गीता अ० ८ श्लोक ५, ६ ‡

यदि अन्तकाल में व्यथा और कष्ट भय लगता हो तो भी भगवान् की शरण लेनी चाहिये। गीता अ० १४ श्लोक २ †

यदि शारीरिक कष्ट असह्य है तो किसी भी मनुष्य की सामर्थ्य नहीं है कि दैवी दण्ड को दूर कर सके। केवल जगत् पिता, दीनबन्धु भगवान् के सम्मुख सरल और विनय भाव से रुदन करके निवेदन करना चाहिये एवं उसी को स्मरण रखना चाहिये। भगवान् चाहें तो सब कुछ कर सकते हैं। यदि कल्याण का अतीव टान है तो उसका भी एक मात्र उपाय भगवत् आश्रय ही है। गीता अ० १२ श्लोक ७ *

यदि अपने किये पापों को याद करके डर लगता हो तो भी भगवान् की शरण लेनी चाहिये। गीता अ० १८ श्लोक ६६ †

यदि अन्तकाल में भगवान् याद रहें ऐसी चाह हो तो भगवत् चिन्तवन की वृद्धि करनी चाहिए। गीता अ० ८ श्लोक ६ ‡

यदि अपने साधन की तुच्छता और दुराचरणों की अधिकता देख कर डर लगता है तो उसका एक मात्र उपाय प्रभु शरण ही है। गी० अ० १८ श्लोक ६२ +

सब प्रकार के न्याय से बिना भगवत् कृपा, आश्रय और भजन के सुख और शान्ति का कोई भी उपाय नहीं है। जैसे गो स्वामी तुलसीदासजी कहते हैं:—

---

‡ अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ ५ ॥
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः ॥ ६ ॥

† इदं ज्ञान मुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ २ ॥

* तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात्।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशित चेतसाम् ॥ ७ ॥

† सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ।६६

‡ यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यंते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौंतेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६ ॥

+ तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शांतिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।६२

सीता पति रघुनाथ जू तुम लग मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को सूझत और न ठौर॥

शरीर का नाश या रोग चिन्ता का विषय नहीं है। चिन्ता का विषय तो भगवान् की अप्राप्ति है। भगवान् के भक्त उसीकी चिन्ता किया करते हैं।

चिन्ता तो हरिनाम की और न चितवे दास।
जो कुछ चितवे नाम बिन सो ही काल की फांस॥

यदि आप कहें चिन्ता तो होती है पर भगवान् का भजन नहीं होता। तो यह समझ की भूल है। भगवान् के भजन की चिन्ता नहीं है, संसार की ही चिन्ता है। यदि भजन की चिन्ता हो अथवा भगवान् के ध्यान की चिन्ता हो तो भगवान् के भजन ध्यान की जो चिन्ता है सो भी तो भजन ही है। जिसको जिस बात की चिन्ता है उसको उसी बात की स्मृति आप ही आप होती है। आप रोग की या क्लेश की चिन्ता छोड़ कर चिन्ता मणि भगवान् की चिन्ता करिये। जिसकी चिन्तासे सब चिन्ताएं नाश हो जाती हैं।

तुलसी चिंत चिन्ता न मिटे बिन चिन्ता मणि पहिचाने।

और एक बात याद रखनी चाहिये कि अपने कल्याण का विश्वास रखना चाहिये। जिसको अपने कल्याण का निश्चय विश्वास है उसके कल्याण में संशय नहीं है। जो मनुष्य अपने कल्याण में संशय मानता है उसके कल्याण में संशय ही रहता है। यदि कोई कहे कि बिना साधन के कल्याण कैसे माना जा सकता है? तो उसके लिये यह उत्तर है कि भगवत् कृपा बल से एक नीचातिनीच पुरुष का भी कल्याण हो सकता है और साधन के अभिमानी एक परिश्रमी को भी कल्याण में देर लग जाती है। इसलिये अपनी बुद्धि, विचार शक्ति को भगवान् के चरणों में अर्पण करके एक मात्र भगवान् के भरोसे अपने को छोड़ देना चाहिये। जब किसी बात की चिन्ता हो उसी समय सचेत होकर प्रसन्न मन से भगवान् से कहना चाहिये कि प्रभो! जो कुछ आप करते हैं सो ठीक करते हैं और इसमें मैं मूर्खता वश आपको न पहचान कर शोक दुःख करता हूं। प्रभो! क्षमा कीजिये!! क्षमा कीजिये!!! गीता अ० ७ श्लोक ७ के।

सर्वत्र सर्व रूप भगवान् को देख कर बारंबार प्रसन्न होना चाहिये। चाहे जैसा भी दुःख शोक, हानि लाभ, रोग, मान अपमान, आकर प्राप्त हो उसको भी भगवत् रूप समझ कर आलिंगन करना चाहिये। जैसे एक भक्त ने कहा है।

देख दुःख का वेष धरे मैं नहीं डरूंगा तुम से नाथ!
जहां दुःख वहां देख तुम्हें मैं पकड़ूंगा जोरों के साथ॥
नाथ। छिपाओ तुम मुंह अपना चाहे अति अंधियारे में।
मैं लूंगा पहचान तुम्हें एक कोने में जग सारे में।
रोग शोक धनहानि दुःख अपमान-चोर अति-दारुण-क्लेश।
सब में तुम सब ही हैं तुम में, अथवा सब तुम्हरे ही वेष॥
तुम्हरे बिना नहीं कुछ भी जब, तब फिर मैं किस लिये डरूं।
मृत्यु-साज सज यदि आओ तो चरण पकड़ सानन्द मरूं॥
दो दर्शन चाहे जैसा भी दुःख वेष धारण कर नाथ!
जहां दुःख वहां देख तुम्हें मैं पकड़ूंगा जोरों के साथ॥

---

* मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥ ७॥

श्रेयो निरूपण

क बार जनक महाराज ने महात्मा पराशर से प्रश्न किया कि इस जगत् में श्रेय वस्तु क्या है ? उत्तम गति कौनसी है ? कौनसा किया हुवा कर्म नष्ट नहीं होता ? कहां गया हुवा पुरुष पुनः नहीं लौटता ? तब पराशर मुनि कहने लगे:-

असंगः श्रेयसो मूलं ज्ञाने ज्ञानगति पराः ।
चीर्णं तपो न प्रणश्येद्दापः क्षेत्रे न नश्यति ॥

किसी का संग न करना कल्याण का मूल है, ज्ञान उत्तम गति मानी जाती है, किया हुवा दान निष्फल नहीं जाता। जो मनुष्य अधर्म रूपी पाश को काट कर धार्मिक कर्मों में प्रीति करता है और सब प्राणियों को अभय दान देता है वह उत्तम गति पाता है। संग रहित पुरुष विषयों में रहने पर भी पद्म पत्रवत् उनसे सर्वदा अलिप्त रहता है और आसक्ति वाला पुरुष सर्वदा उनमें फंसा ही रहता है।

नाधर्मः लिप्यते प्राज्ञं पयः पुष्कर पर्णवत् ।
अप्राज्ञमधिकं पापं लिप्यते जतु काष्ठ वत् ॥

जल जैसे कमल के पत्ते को नहीं चिमटता ऐसे ही पाप भी धर्म बुद्धि पुरुष को नहीं छूता है, परन्तु लाख जैसे काष्ठ में चिमट जाता है ऐसे ही पाप भी अज्ञानी पुरुष को चिमट जाता है। आत्मा के स्वरूप को जानने वाले तत्त्ववेत्ता, पुण्यात्मा पुरुष कर्म के फलों से दुःखित नहीं होते, परन्तु जो पुरुष ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों के विषयों में मदमत्त होकर अपने किये हुवे पापों का विचार नहीं करता तथा शुभाशुभ कर्मों में रातदिन आसक्त रहता है वह पुरुष महाभय को पाता है। जो पुरुष वीतराग होकर क्रोध को जीत लेता है तथा आत्मा के स्वरूप को भली प्रकार जानता है वह पुरुष कल्याण का भागी होता है। जैसे जलाशय का दृढ़ बन्ध बांधने पर उसमें जल बढ़ता ही रहता है, ऐसे ही जो पुरुष शास्त्रों में वर्णित मर्यादा में चल कर, सब आसक्तियों से दूर रह कर धर्म रूपी बन्ध को बांधता है उसके तप और पुण्य की सर्वदा वृद्धि होती है। जैसे शुद्ध सूर्यकान्तमणि सूर्य में से तेज को ग्रहण कर लेती है वैसे ही जीव भी समाधि द्वारा ब्रह्म के स्वरूप को ग्रहण कर लेता है। जैसे जगत् में तिल भिन्न भिन्न प्रकार के पुष्पों के संग से अतिरमणीय सुगन्ध को प्राप्त करता है ऐसे ही सत्वगुण भी साधु पुरुषों के संग से सर्वदा बढता ही है। जिस पुरुष को स्वर्ग की इच्छा होती है वह पुत्र, पत्नी, सम्पत्ति आदि का त्याग कर देता है और उसकी बुद्धि शब्दादि विषयों से निवृत्त हो जाती है। परन्तु जिस मनुष्य की बुद्धि विषयों में लिप्त होती है वह अपने कल्याण को कभी नहीं जानता। मछली जिस प्रकार मांस से सने हुए कांटे को निगल कर नष्ट हो जाती है वैसे ही अज्ञानी पुरुष संसार की सब प्रकार की वासनाओं से लिप्त होकर महादुःख भोगता है। देहेन्द्रिय आदि की भान्ति मनुष्य समूह स्त्री पुत्रादि के समुदाय से घिरा रहता है परन्तु वे सब केले के सार की भान्ति निस्सार होते हैं, और जैसे पाषाण की नौका समुद्र में डूब जाती है वैसे ही वह भी

संसार समुद्र में डूब जाता है।

न धर्मकाल पुरुषस्य निश्चितो,
न चापि मृत्युः पुरुषं प्रतीक्षते।
सदा हि धर्मस्य क्रियैव शोभना॥
यदा नरो मृत्यु मुखेऽभिवर्तते॥

पुरुष के धर्माचरण करने के लिये कोई समय निश्चित नहीं किया गया है और मृत्यु भी इसने धर्माचरण नहीं किया है इस बात की राह नहीं देखता। मनुष्य सर्वदा ही मृत्यु के मुख की ओर दौड़ा जा रहा है। अतः सर्वदा धर्म करते ही रहना चाहिये। जैसे अंधा पुरुष अभ्यस्त होने के कारण अपने घर में बिना किसी दिक्कत के आता जाता है ऐसे ही बुद्धिमान् पुरुष भी गुरूपदिष्ट मार्ग से योग-युक्त होकर परम गति को पाता है। जन्म के पीछे मृत्यु अवश्य होती है, जन्म मरण के आधीन है। अविवेकी पुरुष मोक्ष धर्म को नहीं जानता है अतः संसार बन्धन में बन्ध कर जन्म मरण के चक्र में पड़ा रहता है। जो मनुष्य बुद्धि पूर्वक ज्ञान मार्ग में चलता है उस मनुष्य को इस लोक में तथा परलोक में सुख मिलता है। कमल जैसे अपने में लगी हुई कीच को त्याग देता है वैसे ही पुरुष का आत्मा भी अपना ज्ञान होने पर आत्मा के उपाधि रूप मन को त्याग देता है। मन आत्मा को योग क्रिया की ओर प्रेरित करता है और आत्मा योग-युक्त होकर मन को परम पद में लय कर देता है, आत्मा जब योग से सिद्ध हो जाता है तब सब उपाधियों से शून्य होकर अपना दर्शन करने को समर्थ होता है। जो मनुष्य इन्द्रियों के विषयों में लिप्त होना मात्र ही अपना धर्म मानता है वह मनुष्य सत्य धर्म से पतित हो जाता है, और तिर्यकादि निम्न योनियों में जन्म लेता है। विवेकी पुरुष पुण्य कर्मों के प्रभाव से स्वर्गादि लोकों को जाता है। जैसे अग्नि में पकाये हुए मिट्टी के घड़े में भरा हुवा जल रिसता नहीं है, ऐसे ही तप करके जिसने अपने शरीरको पका लिया है वह ब्रह्मलोक तकको भोगता है और उसके पुण्य रिसते नहीं। जो मनुष्य जन्मसे अंधा होता है वह मार्गको नहीं देख सकता, ऐसेही जिसकी बुद्धि माया से अन्धी हुई हुई है और जो उदर के भरण पोषण में परायण है ऐसा अज्ञानी पुरुष आत्मा के मोक्ष मार्ग को नहीं जानता है। वैश्य जैसे समुद्र मार्ग से व्यापार करने को जाकर अपने मूल धन के अनुसार धन कमा कर ले आता है तैसे ही यह जीव भी संसार सागर में व्यापार करने के लिये आकर अपने कर्म और विज्ञान के अनुसार उत्तम अथवा अधम गति को पाता है। प्राणी जगत् में उत्पन्न होतेही अपने साथ अपने पूर्व जन्म के कर्मोंको लाता है। कोईभी प्राणी इस जगत्में किसी प्रकार के पूर्व जन्म के कर्मों के बिना शुभ अथवा अशुभ फल को नहीं पाता है। जैसे समुद्र की ओर जाने वाली सब नदियां समुद्रमें लीन हो जाती हैं तैसे ही मनभी नित्य योगका आश्रय करके मूल प्रकृति में लीन होजाता है। जिस मनुष्यका मन अनेक प्रकार के स्नेह पाश से बन्ध जाता है वह अज्ञान के वशमें हुवा पुरुष जलमें बनाये हुवे रेतके मकान की भान्ति नष्ट हो जाता है। मित्र वर्ग संकल्पसे उत्पन्न होते हैं, सगे सम्बन्धी अपने स्वार्थ वश मिलते हैं और भार्या पुत्र तथा सेवकादि यह सब पैसा लेने के लिये होते हैं। माता, पिता तथा और कोई परलोक में किसी की सहायता नहीं कर सकते जीव का स्वर्ग में एक धर्म ही हित कर सकता है। प्राणी ने पहिले जन्म में

जो शुभाशुभ कर्म किये हैं उसके वे शुभाशुभ कर्म उसको इस जन्म में फल दे रहे हैं यह समझ कर मनुष्य को बुद्धि पूर्वक शुभ कर्म करना चाहिये। जो पुरुष शुभ कर्मों का उद्योग करता है, उसको सहायक भी मिल जाते हैं और ऐसे पुरुष का कोई काम कभी नष्ट नहीं हो सकता। जिस पुरुष का मन एकाग्र है, जो योग युक्त है तथा जो शूर वीर और बुद्धिमान् है उसको किरणें जैसे सूर्य का त्याग नहीं करती हैं वैसे ही लक्ष्मी कभी नहीं त्याग करती है। जो पाप रहित पुरुष आस्तिक भाव से, उद्योग से, गर्व शून्य शान्ति से तथा बुद्धि से कार्य करता है उस पुरुष का कार्य सफल होता है। जीव पूर्व जन्म में प्रयत्न पूर्वक जो शुभ वा अशुभ कर्म करता है वे शुभ और अशुभ कर्म माता के उदर में प्रवेश करते हैं तब से भोगने में आते हैं। और काम से प्रेरित हुवा वायु लोहे से तोड़े हुवे लकड़ियों के चूरे को जैसे उड़ा देता है ऐसे ही किसी से भी न हटाया जा सकने वाला मृत्यु कालक्रम से सबको उड़ा देता है।

प्रेमा भक्ति

गतांक से आगे।

प्रिय पाठक! शिष्य के अखिल प्रेम से जब गुरु दयालु होते हैं तो शिष्य को प्रेमा भक्ति प्रदान करते हैं। वह भक्ति क्या है? "ईश्वरे परानुरक्ति" अथवा परमेश्वर में परम अनुराग, यहां पर संशय उत्पन्न होता है कि ईश्वर को निराकार कहते हैं उससे प्रेम हो तो कैसे हो? इसी पर गीता में कहा है कि—

"अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते"।

कि देह धारियों के लिये निराकार ईश्वर का रास्ता पाना बड़ा कठिन है, सचमुच जिसका रंग नहीं, रूप नहीं उसको यह चित्त समझे भी तो कैसे समझे, योग शास्त्रके अनुसार भी निराकर का अनुभव असम्प्रज्ञात समाधि में जाकर हुआ करता है। उससे पहिले सविकल्प समाधि तक तो साकार ही ध्येय विषय होता है। अतः यह निश्चय होता है कि भक्ति के लिये ईश्वर को साकार अवस्था में ध्यान करना आवश्यक होगा बिना मूर्तिमान प्रीतम से प्रेम करना असम्भव ही होगा, अब हम शास्त्रानुसार देखते हैं तो प्रतीत होता है कि जब सृष्टि उत्पन्न करने की आवश्यकता हुई तो निराकार ईश्वर साकार रूप में प्रकट हुआ और विष्णु भगवान् की मूर्ति बन गई। इसी कारण आदि काल में विष्णु की उपासना प्रचलित हुई, फिर इसी तरह शिवजी की उपासना चली क्योंकि वह भी जगत् के संहार कर्ता थे। ब्रह्मा की उपासना भी कई लोग करते रहे परन्तु इनसे प्रेम ना बन सका। क्योंकि वह तो छोटे से मनुष्य के मुकाबिले में बड़ी महान् व्यक्तियें थीं। प्रेम के वास्ते यह भी नियम है कि प्रेमी और प्रीतम सजाती हों विजाति से पूर्ण प्रेम बन ही नहीं सकता। इसी कारण प्रेम चक्र को पूरा करने के लिये भगवान् मनुष्य रूप में आकर अवतार धारण किया करते हैं जिससे प्रेमी और प्रीतम को मिलाने वाली प्रेम की जंजीर सफल हो जावे, यदि भगवान् मानुष देह धारण न करें तो प्रेमी भक्तों को उनके दर्शन करने तथा प्रेम करने का अवसर ही कब मिल सकता है? यद्यपि दुष्टों का नाश

करना भी अवतार का कर्तव्य होता है वरंच मुख्य उद्देश्य प्रेमी जनों के प्रेम बढ़ाने का ही हुआ करता है। भगवद्गीता के ग्यारवें अध्याय में जब अर्जुन को विराट रूप का दर्शन कराया तो वह डर कर यही विनय करने लगा कि भगवन्! मुझे मनुष्य रूप में ही दर्शन दें। फिर जब भगवान् ने मानुषी रूप दिखाया तो वह होश में आकर सावधान हुआ जिसके विषय में भगवान् ने कहा कि:—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
अस्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्यमहमेवं विधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

इस वचन से भी भक्ति की ही विशेषता कही है कि किसी उपाय से अर्थात् वेद पाठ, कर्म कांड विधान, तप, दान तथा पूजनादि साधनों से ऐसे दर्शन नहीं हो सकते। ज्ञान से भी अनुभव होगा तो सच्चिदानंद पूर्ण ब्रह्म का ही होगा और पूरण ब्रह्म तो कृष्ण के शरीर की कांति ही है। धूप के अनुभव से सूर्य का ज्ञान नहीं हो सकता प्रेम होना तो दूर रहा यदि इस बात में संशय हो तो प्रमाणार्थ ब्रह्म संहिता में कहा है।

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदंड कोटि,
कोटिष्वशेष वसुधादि विभूति भिन्नम्।
तद्ब्रह्म निष्कल मनन्तमशेष भूतम्,
गोविंदमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

फिर शत दूषणी संहिता में भी लिखा है:—

चिदानन्दो विलासी च नित्य मूर्तिः सुखात्मकः।
यस्यांग कान्ति पुंजस्तु ज्ञानिभिर्ब्रह्म पठ्यते॥

उस आदि पुरुष जिसको भगवद्गीता के पंदरवें अध्याय में उत्तम पुरुष भी कहा है के अवतार श्रीकृष्ण ही हुए हैं। इन से अतिरिक्त जितने अवतार हुए हैं वह विष्णु भगवान् के होते रहे हैं। जिनमें से मुख्य अवतार मानुषी तनु में श्री रामचंद्र हुए। जिनको मर्यादा पुरुषोत्तम कहा है। उन्होंने धर्म मर्यादा को उलंघन नहीं किया। इसलिये पूर्ण प्रेम का उनके द्वारा विकाश नहीं हुआ और न ही कोई प्रेमी भक्त उनसे उतना प्रेम कर सकता है जितना अगाध प्रेम श्रीकृष्णचंद्र से सम्भव है। यूं तो अपने इष्टदेव से हर एक भक्त का प्रेम बड़े से बड़ा हुआ करता है, तो भी इष्टदेव यदि मर्यादा ही स्थापित रखने वाला होगा तो प्रेमी का प्रेम भी मर्यादा की सीमा के अन्तर्गत ही रहेगा। पुराणों में आता है कि श्रीराम को जिन स्त्रियों ने प्रेम की निगाह से देखा था वो ही आत्माएं गोपी रूप में प्रकट होकर श्रीकृष्णचंद्र से प्रेम करके अपनी वासना को तृप्त करने लगीं। कारण यह कि श्रीराम ने तो मर्यादा को उलंघन करके उनसे प्रेम करना न था। आत्माओं की अभिलाषा श्रीकृष्णावतार में ही पूरी हो सकती थी। इसीलिये भगवान् कृष्ण को लीला पुरुषोत्तम कहते हैं। पूर्ण अवतारों से हर एक शक्ति का विकाश पूरे तौर पर हुआ करता है। प्रधान शक्तियें (१) प्रेम, (२) प्रभाव (३) ज्ञान ही हैं सो श्रीकृष्ण ने बाल्यावस्था में वृंदावन में पूर्ण प्रेम का विकाश किया। गोपी प्रेम से बढ़ कर आज तक संसार में कोई भी प्रेमी नहीं हुआ। इससे भी बढ़ कर राधा प्रेम हुआ है। उसके चित्त में तो मनुष्य स्त्री की भावना ही न थी अर्थात् उसके चित्त में फुरना ही न थी कि कृष्ण पुरुष हैं

या स्त्री। वह तो केवल उनको अपना प्रीतम जानती थी। उनमें तो अपना स्वार्थ इतना भी न था कि अपने निमित्त कृष्ण को मथुरा से ही वृन्दावन में बुलावें। वह तो यही कहती थी कि यदि उसका प्रीतम मथुरा में प्रसन्न है तो वहीं रहे, मुझे कुछ परवाह नहीं, मैं बेशक वियोग अग्नि में जलती रहूं परन्तु प्रीतम को उसकी अपनी इच्छा से रंचक मात्र भी विरुद्ध काम करने को नहीं कहूंगी, वह तो सचमुच यही चाहती थी कि:-

राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है।
यहां यूं भी वाह वा है अरु यूं भी वाह वाह है॥

यही सच्चे प्रेम के लक्षण हैं। श्रीकृष्ण ने राक्षसों तथा कंसादि दुराचारियों को बिना शस्त्र प्रहार के मार कर अपना प्रभाव प्रत्यक्ष कर दिखलाया, तीसरी शक्ति अर्थात् "ज्ञान" का विकाश उनके अविनाशी उपदेश भगवद्गीता में मिलता है कि जिसमें कर्मयोग को प्रधान रख कर राजयोग, ज्ञान योग तथा भक्तियोग मनुष्य के लिये परम साध्य कर्तव्य बतलाए गए हैं प्रेमा भक्ति को उच्च कोटि पर पहुंचाने के लिये श्रीकृष्ण को ही प्रियतम, आराध्य देव रखना पड़ेगा। प्रश्न हो सकता है कि गोपियों के सामने तो प्रत्यक्ष कृष्ण चन्द्र उपस्थित ही थे। वह देह तो लोप होगया अब उसे कहां से ढूंढें इसके उत्तर में यह समझना होगा कि जैसे हर एक मनुष्य के स्थूल शरीर के भीतर उसका सूक्ष्म शरीर होता है और स्थूल शरीर आन्तरिक सूक्ष्म शरीर के ऊपर ही का ढांचा बनता है ऐसे ही अवतार के बाहरी शरीर के अंदर उसका सूक्ष्म शरीर हुआ करता है। मनुष्य का सूक्ष्म शरीर तो उसकी इच्छानुसार सदैव ही बना रहता है। क्योंकि ईश्वर सत्य संकल्प होता है। अतः वह शरीर भी सत्य ही रहता है। ऐसे सूक्ष्म शरीर अपने अपने लोक में विचरते हैं। जब कभी उनका प्रेमी व्याकुल हो कर उनको याद करता है तो उसके चित्त से प्रेम की तार निकल कर प्रियतम के लोक में पहुंचती है। तब वह सूक्ष्म रूप में अथवा स्थूल रूप में यथावसर प्रेमी भक्त को दर्शन दिया करते हैं। इसके उदाहरण भक्तमाल ग्रंथ से मिल सकते हैं। अतः प्रेमा भक्ति से चित्त का एकाग्र करना और प्रियतम की याद में व्याकुल होना ही भक्तों का परम साधन है।

श्री पं० अनन्तराम जी योगाचार्य

उपदेशामृत

[ले० श्री० पूज्य भोले बाबा जी अनूपशहर]

(१) साधुओं का संग करना कठिन है, कोई सत्य निष्ठ और सदाचारी ही ऐसा कर सक्ता है। असत्य निष्ठ तो संसारियों का ही संग करेंगे, सजातीय से सजातीय ही मिलता है, विजातीय नहीं मिल सक्ता।

(२) जिसकी जिह्वा में स्वाद की लोलुपता और बोलने की चपलता नहीं हो, जिसका हृदय संतोषी और निस्पृही हो, जिसका स्वाभाव असंग्रही हो, उस पर ईश्वर की महान् कृपा है, ऐसा समझना चाहिये। ऐसे पुरुष को स्वप्न में भी किसी प्रकार का दुःख नहीं होता।

(३) दुनिया के गौरव देने को जो महान् गौरव जानता है, शक्ति और संपत्ति होने पर भी जो निर्बल और कंगाल के समान रहता है, विद्वान् होने पर भी जो विद्या का अभिमान नहीं करता, प्रसिद्ध होने पर भी जो गुप्त के समान रहता है वह सच्चा साधु है, ढोंगी साधु के लक्षण इससे विपरीत होते हैं।

(४) दुःख सुख से अच्छा है, दुःख में ईश्वर भजन भली प्रकार होता है, इष्ट मित्रों की परीक्षा भी दुःख में ही होती है। सुख ईश्वर को भुला देता है, सुख में खुशामदी मित्र भी बहुत आजाते हैं।

(५) जो युवावस्था में ईश्वर भजन नहीं करता तथा युक्त आहार विहार नहीं करता, वह वृद्धावस्था में दुःख पाता है।

(६) जो पुरुष ईश्वर भक्ति और तत्त्व ज्ञान की मात्र बातें ही करता है बर्तता नहीं उसकी पोल उसका मुख ही बता देता है।

(७) जब तक ईश्वर की महत्ता समझ में नहीं बैठती, और जब तक ईश्वर का चिंतवन नहीं होता, तब तक अंतःकरण पवित्र नहीं होता। जब तक अंतःकरण पवित्र नहीं होता तब तक सुख नहीं मिलता।

(८) जो पुरुष सच्चे साधु संतों की सेवा और उनका समागम नहीं करता, वह पांडित और मिथ्याभिमान ही में डूब कर अंत में पछताता है।

(९) श्रद्धा, एक ऐसी वस्तु है, जिसको भक्त और भगवत् के सिवाय दूसरा नहीं जानता अथवा केवल भगवत् ही जानते हैं,

(१०) सर्वदा परमेश्वर में ही चित्त जोड़ना चाहिये। जब तक ऐसा न हो सके तब तक जो भक्त महात्मा ईश्वर के ध्यान भजन में लगे रहते हैं, उनका निरंतर संग करना चाहिये, यानी साधकों को सिद्ध पुरुषों का समागम करना उचित है।

भजन

मोहे प्रभु राखो अपनी शरणा ॥ टेक ॥
अपरंपार पार नहीं तेरो कहा कहों मुख वरना ॥
मन क्रम वचन आस एक तेरी होउ जन्म या मरना ॥
अविरल भक्ति के कारण तुम पर है बावन देउ चरना ॥
जन भीषा अभिलाष यही नहीं चहो मुक्ति गत तरना ॥

२

भजन ते उत्तम नाम फकीर ॥
क्षमा सील संन्तोष सरल चित दरद बन्द पर पीर ॥
कोमल गद्गद गिरा सुहावन प्रेम सुधारस खीर ॥
अनहद नाद सदा फल पायो भोग खांड घृत खीर ॥
ब्रह्म प्रकाश को भेष बनायो नाम मेखला चीर ॥
चमकत नूर जहूर जमागम ढांके सकल शरीर ॥
रहने अचल इस्थिर कर आसन ज्ञान बुद्धि मतिधीर ॥
देखत आतम राम उचारे ज्यों दरपन मध हीर ॥
मोह नदी भ्रम भ्रमर कठिन है पाप पुण्य दोउ तीर ॥
हरि जन सहजे उतर गये ज्यों सूखे ताल को झीर ॥
जग प्रपंच करम वह तो है जैसे पवन अरु नीर ॥
मन मतंगा मतवार चढ़ो है सबऊपर बलवीर ॥
भीषा हीन मलीन ताहि को छीन भयो जसहीर ॥

३

प्रभु जी यही मनोरथ मेरा ॥
कृपा निधान चाल मोहि दीजै करि सन्तन का चेरा।
प्रातः काल लागों जन चरनों निसि वासर दरशन पावों।

तन मन अरप करो जन सेवा रसना हरि गुन गावौं ॥
साँस २ सुमिरो प्रभु अपना संत संग नित रहिये ।

४

रे मन जन्म पदारथ जात ॥
बिछुरे मिलन बहुरि कब ह्वै है ज्यों तरवर के पात ॥
सन्निपात कफ कंठ विरोधी रसना टूटी बात ।
प्रान लिये जम जात मूढ़ मति देखत जननी तात ॥
छिन इक मांहि कोटि जुग बीतत पीछे नर्क की बात ।
यह जग प्रीति सुआ सेमर की चाखत ही उड़ जात ॥
जम के फन्द नहीं पड़ बौरे चरनन चित्त लगात ।
कहत सूर बिरथा यह देही अन्तर क्यों इतरात ॥

५

जा दिन मन पंछी उड़ि जै हैं ॥
ता दिन तेरे तन तरवर के सबै पात झरि जै हैं ॥
घर के कहें बेग ही काढ़ो भूत भये कोउ खै हैं ।
जा प्रीतम सों प्रीति घनेरी सोऊ देखि डरै हैं ॥
कहं वह ताल कहां वह शोभा देखत धूर उड़ै हैं ॥
भाई बन्धु कुटम्ब कबीला सुमरि २ पछितै हैं ॥
बिना गुपाल कोऊ नहिं अपना जस कीरति रहि जै हैं ।
सो तो सूर दुर्लभ देवन को सत संगति में पै है ॥

६

हरि के संग मैं क्यों न गई री ॥
हरि संग जाती कंचन बन आती ।
अब माटी के मोल भई री ॥ १ ॥
बरजो न कोई इन दूतिन को ।
जाती बेर मोहि रोक लई री ॥ २ ॥
हरि बिछुरन इक मरन हमारा ।
नई दासी संग प्रीति भई री ॥ ३ ॥
छल गयो कान्ह बहुरि नहिं आयो ।
अपने हाथ से मैं विदा दई री ॥ ४ ॥
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरश को ।
पिछली प्रीति अब नई भई री ॥ ५॥

७

आवो राम दया कर मेरे वार २ बलिहारी मैं तेरे ॥
विरहनि आतुर पन्थ निहारे, राम २ कह पीव पुकारे ।
पन्थी बूझे मार्ग जोहे नैन नीर जल भर भर रोवे ।
निश दिन तड़फे रहै उदासा आत्म राम तुम्हारे दासा ।
वपु बिसरे तन की सुधि नाहीं दादू विरहनि मृतक माहीं ॥

८

भीजत कुंजन से दोउ आवत ॥ टेक ॥
ज्यों २ बून्द परत चूनर पर त्यों २ हरि उर लावत ॥ १ ॥
अधिक झकोर होत मेघन की द्रुम तर छिन बिलमावत ।
वे हंसि ओट करत पीताम्बर वे चुनरहिं उढ़ावत ॥ २ ॥
तैसे हि मोर कोकिला बोलत पवन बीच घन धावत ।
ले मुरली कर मन्द घोर स्वर राग मलार बजावत ॥ ३ ॥
भींजे राग रागनि दोऊ भींजे तन छवि पावत ।
सूरदास हरि मिलत परस्पर प्रीति अधिक उपजावत ॥४॥

९

कर मन नन्द नन्दन को ध्यान ॥
यह अवसर तोहे फिर न मिलेगो मेरो कह्यो अब मान ॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे कुण्डल झलकें कान ॥
नारायण अलसाने नैना झूमत रूप निधान ॥

१०

गही मन सब रस को रस सार ॥
लोक वेद कुल कर्महि तजिये भजिये नित्य विहार ॥
गृह कामिनी कंचन धन त्यागो सुमिरो श्याम उदार ॥
गहि हरिदास रीति सन्तन की गादी को अधिकार ॥

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित	मूल्य	॥=)
२.	सारसंग्रह	,,	=)
३.	शब्दसंग्रह	,,	-)॥
४.	भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।-)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	-)।
६.	वेदोपनिषत्	,,	।-)
७	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	-)॥।
८.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	॥)
९	भक्ति योग संग्रह	,,	=)॥
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	-)।

मिलने का पता:—

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

केवल टाइटिल पेज महारथी प्रेस, दिल्ली में छपा।